

गंगा-पुस्तकमाला का १२१वाँ पुष्प

भाग्य

[मौलिक उपन्यास]



श्रीकृष्णभचरण जैन

१२१

भाग्य

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(सुधा-संपादक)

दूने योग्य उत्तमोत्तम उपन्यास और कहानियाँ

गभूमि (दोनों भाग)	१), ६)	मधुपर्क	१॥), २
हता हुआ फूल	२॥), ३)	मा (दो भाग)	३), ४)
हृदय की परख	१), १॥)	कर्म-भाग	१॥), २)
चित्रशाळा (दो भाग)	३॥), ४॥)	केन	१), १॥)
हृदय की प्यास	१॥), २)	अप्सरा	१), १॥)
मिस्टर व्यास की कथा	२॥), ३)	गिरिवाला	१), १॥)
नंदन-निकुंज	१॥), १॥)	कर्म-फल	१॥), २॥)
प्रेम-प्रसून (प्रेमचंद)	१=), १॥=)	तूलिका	१॥), १॥)
प्रेम-पंचमी	१), १)	अशुपात	१), १॥)
प्रेम-गंगा	१), १॥)	जासूस की डाली	१॥), २)
गढ़-कुंडार	२॥), ३)	विचित्र योगी	१), १॥)
मंजरी	१॥), १॥)	पवित्र पापी	३), ३॥)
पतन	१॥), २॥)	मृत्युंजय	१॥), १॥)
जब सूर्योदय होगा	१), १॥)	पाप की ओर	१), १॥)
विदा	२॥), ३)	कोतवाल की करामात	१), १॥)
भाई	१), १॥)	प्रेम की भेंट	१), १॥)
प्रेम-परीक्षा	१॥=), १॥=)	अक्षत	१), १॥)
सीधे पंडित	१॥)	संध्या-प्रदीप	१), १॥)
श्रवणा	१), १॥)	गोरी	१), १॥)

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—
संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का १२१वाँ पुष्प

भाग्य

[सामाजिक उपन्यास]

लेखक

श्रीश्रृषभचरण जैन

(रचयिता भार्ही, कैदी, मास्टर साहब, वेश्या-पुत्र, बुरक़े-
वाली, दिल्ली का व्यभिचार, बिखरे मोती,
सत्याग्रह, हड़ताल, ग़ज़वाणी, आदि)

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

प्रकाशक और विक्रेता

लाखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १॥]

सं० १६८८ वि०

[सन्दी १३]

इसे लिखां, तो मैं आपको बताना चाहता हूँ कि जंगली बेल का खयाल दिल से निकाल दिया, और सुध-बुध भूलकर उसके साथ बहा भी नहीं। मैंने हर एक शब्द पर इसके सारे कथानक की तस्वीर दिल की आँख के आगे रखी, और दिमाग का पूरा जोर लगाकर इसे लिखा।

परंतु छपकर जब किताब मेरे सामने आई, तो मैंने यह महसूस किया कि पूरे जोर के बावजूद भी कई जगह रंग ठीक नहीं भरा गया है। गूणी पाठक भी उन स्थलों का अनुभव कर लें, तो अचरज नहीं; पर जो न समझ सकें, उन्हें यहाँ बता देने लायक हिस्मत का मैं अपने अंदर अभाव देखता हूँ। सुमकिन है, आगे की चीजों में वैसी गलतियाँ बचा जाऊँ।

मेरा ऐसा मत है कि किताब लिखने की निश्चित उसकी भूमिका लिखना ज्यादा मुश्किल है। इस किताब की भूमिका लिखने का कारण यह है कि यह मुझे ज्यादा प्यारी लगी है, और इसे मैं अपने औपन्यासिक जीवन का 'अ' मानता हूँ।..... आप विश्वास रख सकते हैं कि इससे आगे हर्गिज नहीं !

बाजार सीताराम
दिल्ली
२६-७-३१

}

स्नेह-पात्र—
ऋषभचरण जैन

भाग्य

(१)

उम्र उसकी बीस वर्ष की है, और नाम कुमारी । व्याह अभी हुआ नहीं है, कुटुंब में केवल मा है ।

बीस वर्ष की हिंदू-बाला कुँआरी कैसे ? सुनिष्ट ।

दयावती उसकी मा का नाम है । बड़े घर की बेटी थी, और बड़े घर में व्याही आई, इसलिये दयावती को अपने अतीव वैभव की याद भूलती न थी । गरीबी आए मुश्किल गुजर चुकी थी, और बीस रुपए मासिक के दर्जनो नौकर रखनेवाली दयावती वर्षों से एक नौकर के वेतन में गुजारा चला रही थी, पर क्या मजाल, जो उसके आत्म-सम्मान, उसकी हृदय और उसके बढ़पन में बाल बराबर फर्क पड़ा हो । लक्ष्मी चंचल है, हुआ करे, वह चंचल क्यों हो ? और वह अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन क्यों खाले ? इसी युक्ति के आधार पर उसके उपर्युक्त गुण—जली हुई रस्सी की पेंठन की तरह तो फटना ठीक नहीं, हाँ, चंद्रमा के सूखे समुद्र-चिह्न की तरह कह सकते हैं—उसमें रह गए थे ।

लक्ष्मी कुमारी को बड़े ठाट-घाट से स्कूली शिखा दी गई थी । गाड़ी में जाती, और गाड़ी में आती । दो साईस गुलाबी साफे बाँधे पीछे खड़े रहते, कोचवान की फुँदनेदार बर्दी मल-मल चमकती और छोटे का पॉलिश किया हुआ साज सूरज की रोशनी में शीशे का धोखा देता ।

जो हाँ, इस गाड़ी में बैठकर वह स्कूज जाती और आती थी ।

मा बड़े संकट में पड़ी। बेटी का मोह उसे कितना था, यह आपके कैसे बताऊँ ? और, बेटी की इच्छा-पूर्ति के लिये वह कितना त्याग कर सकती थी, यह भी.....।

और, कहने लगी—“मेरी बच्ची, तुम्हें इतना आग्रह क्यों है। काफ़ी पढ़-लिख ली, अब मैट्रिक पास करने से ही क्या होगा.....?”

सोचकर बरस की बेटी ने मा की गोद में सिर रखकर बच्चों की तरह सुरीलाकर कहा—“बताऊँ ?”

“हाँ।”

“देखो, मेरी हेड मिस्ट्रेस कहती थीं, मैट्रिक पास करने के मुझे स्कूल में लौकरी मिल जायगी, और इस तरह हमारा ज्ञान.....”

उस दिन सइसा एक ऐसी बात हो पड़ी थी, और ऐसा निकल आया था कि दयावती को बेटी की बात का प्रत्युत्तर दे अवकाश न मिला, और उसे एकदम वहाँ से घुटना पड़ा। पूछा—“तो मा, मैं नहीं छोड़ूँ न ?”

“अच्छा !”—मा के मुँह से यह ‘अच्छा’ बहुत जल्दी में, बिना सोचे-विचारे निकल गया था। वह काम क्या था ? कुछ आवश्यक और अनिवार्य था कि उसकी मा को सचमुच कुछ संविचारने की गुंजाइश न रही।

इधर कुमारी हर्ष से उछल पड़ी।

भागी-भागी गई। पास की सहेलियों के पास जाकर यह खुशखबरी सुना आई। सभी ने हर्ष प्रकट किया, सभी को संतोष हुआ, और सभी ने उसे बधाई दी।

उसने निराश होकर उस दिन दोपहर को पाख्य पुस्तकें इधर-उधर फेंक दी थीं, उन्हें लँभाकर उठाया, और फाड़-पोछकर ययास्थान रक्खा। टाइम-टेबिल का कागज़ लो रूखासी होकर उसने फाड़ डाला था, अब उसे गीले आटे से जोड़कर दूसरे साफ़ कागज़ पर बतार

ध्वात-कलम-पेंसिल इधर-उधर से खोजकर उसने ठीक-ठाक किया, और बड़ी रात तक उस दिन का पाठ याद करती रही।

उसकी माँ को उससे कुछ पूछ-ताछ करने का अवकाश तक भी न मिला। वह जिस काम में व्यस्त थी, आधी रात तक उससे छुट्टी नहीं मिली थी।

आप सोचें, ऐसा वह क्या काम था? शायद, लेखक को बहानेबाज़ और कल्पना-शून्य समझें। वेशक, मुझे बता देना चाहिए। बात यह थी, कुमारी के पिता से, कई बरस हुए, किसी ने चार हजार रुपए कर्ज़ लिए थे। दुनिया में सभी तो वेईमान और दूसरे की विपत्ति से अनुचित लाभ उठानेवाले होते नहीं, अतएव उस संपन्न कर्ज़-स्वाद्ध ने, मन-ही-मन अनेक तर्क-वितर्क कर, वे रुपए चुका देना ही स्थिर किया। वे क्या तर्क-वितर्क थे, और क्यों उसने रुपया देना स्थिर किया? यह कहने से एक नई कहानी बन जायगी। मगर यह बात सब जानते हैं कि उसका इकलौता पुत्र सदसा सफ़्त बीमार हो गया था, और शहर से एक प्रसिद्ध ज्योतिषी बुलाए गए थे। अब इससे जो परिणाम निकल सकता है, उसे लिखकर उस बेचारे के चरित्र को कलंकित न कर हम तो यही कहेंगे कि उसकी सद्भावनाओं ने उसे ऐसा करने को प्रेरित किया।

हाँ तो बस, इसी रुपए के भंडार में दयावती इतनी व्यस्त रही थी। कष्ट, ऐसे संकट-काल में चार हजार रुपए की दैवी सहायता पाकर आप कितने व्यस्त न हो जायेंगे, और आपको अपनी संतान की शिक्षा-दीक्षा के संबंध में क्या कुछ सोचना सूझेगा?

कुमारी इस विषय में कुछ न जानती थी। शायद जान तो जाती, पर वह तो माँ के सामने पढ़ना ही नहीं चाहती थी। शाम तो सारी उसने अबोस-पड़ोस की सहेलियों को झुमाझुमरी देने में बिताई, रात होते ही वह अपनी कोठरी में बैठकर तिरस्कृत पुस्तकों को सँभालने

मा ने देवाज्ञे पर खड़ी होकर कहा—“बेटी !”

“चेहरा फूट ! कुमारी ने कहा—“हाँ, मा !”

“तू चौके से उठ, मैं झटपट रोटी बनाती हूँ—खाकर स्कूल जा !”

आह ! शंका निर्मूल्य हुई !

मगर यह परिवर्तन क्यों ?

तब धीरे-धीरे सारी बात खुली, और कुमारी का और छः महीने स्कूल में रहना स्थिर हुआ ।

(२)

आखिर मैट्रिक का इस्तहान दिया, और पास हुई । पर अब आगे पढ़ना असाध्य था । इस मैट्रिक पास करने से भी वैसी ही कठिनाई सामने आई, जैसी आगे पढ़ने से आती ।

अर्थात् उसका व्याह.....

जिस दिन परीक्षा का परिणाम आया, कुमारी कुछ महीने सोलह वर्ष की थी । वर की तलाश में तो मा मुदत से थी, अब सरगमी से खोज शुरू हो गई ।

पर मैट्रिक-पास सोलह बरस की लड़की के लिये षाईस साल का बी० ए०, एम्० ए० वर कैसे मिले ?

और मिले तो अनेक, पर जो संपन्न घराने के थे, वे यहाँ रिश्ता न करते थे ; जो गरीब थे, वे भी लंबी रकम दहेज में माँगते थे ; मानो डिग्रियों के बल पर, ससुराल के धन के द्वारा, अपनी सारी गरीबी को धो ढालना चाहते थे ।

उस चार हजार में से पैंतीस सौ रुपया दयावती के पास रखता था, और ब्यासी धूम-धाम से बेटी का ब्याह किसी मध्यम श्रेणी के वर के साथ किया जा सकता था । परंतु पहले ही मैंने कहा न, उसके अतीत वैभव की स्मृति उसे ऐसा करने की आज्ञा न देती थी ।

लक्ष्मी चंचल है—वह चंचल क्यों बने ?—अमीर घर की बेटी है, अमीर घर की बहू, अमीर घर में ही बेटी का ब्याह करेगी ।

लोगों ने समझाया, लक्ष्मी साढ़ की तरह बड़ी जा रही है । घर में जैसे भद्रकाली आग रखी है, न-मालूम कब सर्वनाश कर दे । समय बुरा है ।

पर दयावती किसी की न सुनती थी । कहती, लोग मुझसे जलते हैं, मेरा अशुभ चाहते हैं, मुझे चार हजार रुपया मिल जाने के कारण द्वेष करते हैं ।

ब्याह न हुआ, न हुआ ।

एक दिन हुआ क्या ?

मा-बेटियों का अवशिष्ट अवलंब, वह पैंतीस सौ रुपया एक दिन चोरी चला गया ।

हाय !

जिसने सुना, सिर धुनने लगा । कुमारी के दुर्भाग्य पर और दयावती की मूर्खता पर । हाय ! बेचारी लक्ष्मी ! अब उसका ब्याह कैसे होगा ? समझाते थे, ब्याह से निपटकर चैन से भगवद्भजन में मन लगा ; पर उसकी तो बुद्धि सठिया गई थी । किसी की सुनती ही नहीं, मानती ही नहीं । लो, अब बेचारी लक्ष्मी न-जाने कैसे अपात्र के हाथ पड़े ।

उधर मा-बेटी ने तीन दिन तक अन्न का दाना मुँह में न डाला । मा-बेटी एक साथ न कड़कर अगर यह कहें कि मा की देखा-देखी बेटी भी तीन दिन तक भूखी रही, तो अधिक ठीक है । पड़ोसिनें मलने लगे आई, भैंयें दे गईं, समझा गईं । कोई-कोई जानत-मलामत भी गईं, या पर दयावती चुप बैठी रही । न रीतों, न बयराती, न आई मरती, हि न किसी को जवाब देती । केवल चुप साधे, घुटने पर बायाँ हाथ टेकी, स्थिर दृष्टि से शून्य आकाश में न-जाने क्या ताकती रहती । पड़ोसियों ने पुलिस में खबर दी । तहकीकात हुई, तीन दिन तक

आल-पास के गाँवों के नामी बदमाशों की तलाशियाँ होती रहीं, परंतु न कुछ मिलना था, न मिला।

जब कोई आशा न रही, तो दयावती एक लंबी साँस लेकर खड़ी हुई, और पास बैठी हुई शुष्क-मुखा बेटी का मुख जोर से चूम-कर बोली—“जा बेटी, रोटी चढ़ा !”

स्वर से उसके एक अद्भुत दृढ़ता प्रकट होती थी, और ऐसा ज्ञात होता था, मानो तीन दिन में वह अपने कर्तव्य का निश्चय कर चुकी है।

कठपुतली की तरह उठकर तीन दिन की भूखी बेटी ने रोटी बनाई, माँ ने सहायता की, और फिर चुपचाप दोनों ने खाई।

खा चुकने पर दयावती ने आप-ही-आप कहा—“भगवान् ने लड़की की शिक्षा पूरी करने के लिये ही रुपया दिया था, अब पूरी होने पर छीन लिया। कोई बात नहीं !” और, इसके बाद भी धीरे-धीरे वह कुछ बढ़बढ़ाती रही।

कई दिन बीत गए। सोच धुँधला होने लगा। बात भूलने लगी। मा-बेटी के मुँह पर कभी-कभी हास्य की रेखा दिखाई देने लगी।

एक बात और कह दें। दयावती का मैका देहात में था। उसके पिता किसी समय भारी जमींदार थे, तीन बंदूकों के लाइसेंसयापक थे। मकान क्या, एक बड़े महल में वह रहते थे। चार-चार हाथी उनकी पशुशाला में बँधते थे, और उनके संबंध में कहने लायक तो बहुत-सी बातें हैं—जैसे उनके इलाके में कोई मुकद्दमा अंगरेजी अदालत में न जाने पाता था, खुद फ़ैसला करते थे, कई सौ अफ़ज की शकल में, हथियार-बंद उनके यहाँ नौकर थे, हत्यादि-क़त्ल था, हम उनका एक दोष बताकर ही समाप्त करते हैं। बड़े तेज़ के घर के और गुस्सैल आदमी थे। पड़ोस के एक ठाकुर से एक बार लड़ गई। बात बहुत साधारण थी। मुकद्दमेबाज़ी शुरू हुई। ती थी।

सत्रह बरस सुकृदमा चला, और दोनो ही पक्षों का सर्वस्व उसमें स्वाहा हो गया। सहसा दयावती के पिता का देहांत हो गया। बेटा कोई था नहीं, जो कुछ था, सब दामाद का। पर अब बचा ही क्या था ? जो दस-पाँच हजार था, उसकी दामाद को क्रिक्र क्या थी ? बस, दामाद ने जाकर उनके धन से दो-एक कुएँ, धर्मशाले बनवा दिए, और बाक़ी धन उनके रिश्तेदारों में बाँट दिया।

यानी, दयावती के मैके में दो-एक दूर के रिश्तेदारों के अतिरिक्त और कोई न था। जब तक मौज रही, रोज़ कोई-न-कोई आ टपकता था, पर दिन फिरे, तो किसी की सूरत तक दिखाई देने की द हो गई। किसी प्रकार की सहायता मिलनी तो बहुत दूर की बात है।

दोनो मा-बेटी, अब अपने उसी छोटे, अँधेरे घर में रहकर समय बिता रही थीं। जो दो-चार ज़ेवर बचे, वे भी क्रमशः उदरस्थ हो रहे। और आप जानते हैं, समय सब कुछ करा लेता है, बेचारी मेहनत-मज़दूरी भी करने लगी थीं।

यह मेहनत-मज़दूरी करने की बात आपको ज़रा-सी मालूम होती होगी। अनेक उपन्यासों में आपने इस प्रकार मेहनत-मज़दूरी करनेवाली मा-बेटियों या अकेली मा या अकेली बेटी की बात पढ़ी होगी, पर मेरे उपन्यास की इन मा-बेटियों से पूछिए, मेहनत-मज़दूरी करना कैसा दुस्साध्य कर्म है। यह नहीं कि उससे थाराम-तलवी में बाधा पड़ती है या हाथ दुखते हैं, बल्कि इतना नीचे गिर जाने के कारण उत्पन्न हुई लज्जा का अनुभव न करने में ही सारे कष्ट, सारी मुश्किल और मिलने दुःख का सामना करना पड़ता है। घ्रासकर मा की तो बहुत दे गई, अख़िर। कई बार कोठे में घुसकर रो पड़ी।

मरती, खिए, अनुदारता से काम न लीजिए, ज़रा और तो कीजिए, शाख़ टोपी, कहीं पहुँच गई, और वह ऊँचा आत्मसम्मान कितना नीचे पड़ोया, और जिस दिन वह सुई-तागा लेकर बेटी के साथ बाज़ार

की मज़दूरी करने बैठी, उस दिन उसका कलेजा फटने में कितनी कसर रह गई होगी ?

पर कलेजा न फटता था, न फटा । हाँ, पिचला ज़रूर । अनगिनत चार रोई, और अनगिनत बार मज़दूरी के पैसे से मँगाए हुए आटे की रोटी खाते-खाते उठ जाने पर बेटी ने उसे मनाया ।

.....हाँ, बेटी.....!

बेटी के स्वभाव का कुछ आभास हम पहले दे चुके हैं । कैसी विकार-हीन, कैसी गंभीर, कैसी सरल वह थी, इसका कुछ दिग्दर्शन हम आपको करा चुके हैं । अगर मैं आपसे यह कहूँ कि ऐसा भयानक पतन होने पर भी उसके स्वभाव में कोई विकार और कोई अंतर नहीं पड़ा, तो आप आश्चर्य तो न करेंगे ? ना, नहीं करना चाहिए, क्योंकि सचमुच ही नहीं पड़ा । इसमें ज़रा भी झूठ नहीं । हाँ, यह मुझे कहना ही पड़ेगा कि उसकी गंभीरता कुछ ज़्यादा बढ़ गई, और वह पहले की उदासी और बुझी-बुझी रहने की आदत कुछ घट गई । यानी अब हर वक्त उसके मुख पर एक अद्भुत तेजस्विता और ताज़गी दिखाई देती थी, और न-जाने किस गहन तपस्व की चिंता में वह जीन रहती थी । सुबह से शाम तक सारा समय इस प्रकार चुपचाप सीने-पिरोने में बिता देती कि आप देखते, तो आश्चर्य करते । आप करते या न करते, यह मैं नहीं कह सकता, पर उसकी मा अवश्य करती थी, और कभी-कभी उसके ऐसे भाव पर मन-ही-मन नाराज़ भी हो जाती थी । पर उस नाराज़गी को प्रकट न कर सकती थी । अजी, यह तो दूर रहा, वह तो उसके सामने बैठने या उससे आँखें मिलाते तक में शर्माती थी । कभी भीतर की कोठरी में बैठती, कभी मुँह ढककर पढ़ रहती, कभी पास-पड़ोस में चली जाती, कभी.....

मतलब यह कि हर वक्त वह बेटी से आँखें चुराती फिरती थी । पास-पड़ोस में यह चर्चा थी—बुढ़िया बड़ी कृतज्ञ है, बड़ा कामचोर

है, यही नीच है ! वेटी की कमाई पर गुज़र कर रही है, पता नहीं, कौन-से नरक में इसे जगह मिलेगी, इत्यादि ।

दयावती के कानों में यह चर्चा न पड़ी हो, ऐसा न था । पर सब सुनकर भी वह वेटी के साथ या वेटी के सामने बैठकर काम न कर सकती, न कर सकती थी । हाय-हाय ! भला चर्चा करनेवाले क्या जानें, उसके हृदय में कौन-सी ज्वाला धधक रही थी, जो उसे एक जगह स्थिर न रहने देती थी ।

...हाय ! वेटी का व्याह.....

बस, यही वह आग थी, यही वह चिंता थी, यही वह लज्जा थी, और यही वह उद्देश था, जिसके कारण उसे खाना-पीना, सोना, उठना-बैठना, यहाँ तक कि जीता रहना भी अत्यंत कष्ट-पूर्ण मालूम होता था ।

अब व्याह कैसे हो ? अब तो कोई उपाय न रहा । संपन्न घर तो पहले ही दुष्प्राप्य था, अब असंपन्न शिक्षित भी कहीं से मिले ? भारी दहेज देकर कैसे उसकी धन-पिपासा को शांत करे. और कैसे उसकी शिक्षा का सदुपयोग कराए ?

और आप ही बताइए, किसी अशिक्षित, असंपन्न, अभद्र, असुंदर घर को कैसे वह अपनी फूल-सी सुकुमारी लाडो वेटी सौंप दे, और अपने साथ ही कैसे उसकी सारी महत्वाकांक्षा, सारी उमंग, सारी प्रसन्नता पर पानी फेर दे ? हाय ! कोई इस विपत्ति से बेचारी को छुटकारा दिलाकर महापुरुषोपाजन करे !

दिन बीतने लगे —व्याह न हुआ ।

एक बरस की दीर्घ-धूप में अनेक लड़के मिले, पर कोई बदसूरत, कोई दुराचारी, किसी के तीन व्याह हो चुके, कोई कुसंस्कृत, कोई मूर्ख—बस, इन्हीं दोषों के कारण बेचारी लड़की अविवाहित ही रही । लोगों की राय में—समाजी दयावती का कैसा दंभ था !

ज्यों-ज्यों दिन बीते, दौड़-धूप में शिथिलता होती गई। रोग पुराना होता गया, चिंता घटती गई।

क्रमशः चार वर्ष बीते, और कुमारी अब बीस वर्ष की है।

एक बात रही जाती है। स्कूल की एक सखी दयावती से अभी तक स्नेह-बंधन नहीं तोड़ सकी है। बड़े घर की बेटी है। नाम है करुणा। कुमारी के साथ ही उसने मैट्रिक पास किया था, अब आगे पढ़ रही है। शायद फ़ोर्थ इयर में है। जिस दिन पढ़ना छूटा, कुमारी तो घर की चिड़िया हो गई। भला हिंदू की लड़की, वयस्क और अविवाहित कैसे घर से बाहर निकले ? पर उसकी वह सखी करुणा बराबर इससे मिलने आती रहती है। विशेष परिचित तो आप आगे चलकर उससे होंगे, वहाँ तो कुछ और ही बात कहना चाहता हूँ। उसे सुनिए—

आज से तीन वर्ष पहले करुणा ने कुमारी से कहा था—“स्कूल की प्राइमरी कक्षाओं के लिये एक अध्यापिका की आवश्यकता है। प्रधान अध्यापिका खुशी से वह ‘चांस’ तुमको दे देंगी। अगर तुम कहो, तो कोशिश की जाय।”

कुमारी ने कहा—“मा से पूछूँगी।”

यथासमय मा से पूछा गया। मा-बेटी आमने-सामने खड़ी थीं। बेटी की बात सुनकर मा ने आगे बढ़कर उसे छाती से चिपका लिया, और रोते-रोते बोली—“अरी, मेरी बेटी, तू यह क्या कहने लगा !”

एक बार ख़ूब जोर से छाती से चिपकाकर दयावती कोठरी में घुस गई, और दर्वाज़ा बंद करके शाम तक बाहर न निकली।

शाम को निकली, तो आँखें सूज रही थीं, चेहरा जाल हो रहा था, शरीर काँप रहा था।

बेटी से बोली—“ना बेटी, ऐसा न होगा। विचार तक न करना।”

बस, तब से अब तक वह बात ज्यों-की-त्यों दबी पड़ी है !

(३)

एक दिन संध्या-समय कुमारी कार्यवशात् सोने की कोठरी में गई । दीवार पर एक फोटो लटक रहा था । मैट्रिक की समस्त छात्राओं का यह सामूहिक चित्र था । कुमारी चित्र के पास खड़ी हो गई, और प्रत्येक छात्री को देख-देखकर पहचानने लगी ।

ओह ! कैसे मधुर समय का चित्र उसकी आँखों-आगे से घूम गया !

वह साथियों की चुहल, वह प्रतिस्पर्द्धी प्रेम, वह झूठसूठ की लड़ाई, वह माधुर्य-पूर्ण 'कुटी', वह बाल्यपन की दलबंदी—ओह ! वे सब कहाँ विलीन हो गई ? हाय ! अब वे कहाँ देखने को मिलेंगी ?

माना, कुमारी इन सब चंचल और बचपन की शैतानियों में भगला हिस्सा नहीं लेती थी, या लेती भी थी, तो बहुत कम; मगर इससे कैसे इनकार करूँ कि वह इन्हें देख-देखकर कम-से-कम प्रसन्न तो होती थी ? या अब उन्हें याद कर-करके प्रसन्न तो होती ही है ?

इस बीस वर्ष की कुमारी पर उस मधुर स्मृति ने कुछ ऐसा असर ! माला कि उसकी आँखों से आँसू गढ़ने लगे ।

कई आँसू डलक चुके थे, और उसने आँखें पोछी नहीं थीं । सहसा संयोगवश दयावती, उसकी मा, कोठरी में घुस आई ।

घुसते ही बेटी के आँसुओं पर उसकी नज़र गई । चण-भर को द्वार के पास ठिठककर उसने अचरज से उधर देखा, और फिर आगे बढ़-कर बेटी को धार्ता से लगा लिया । बोली—“क्यों.....?”

फलेजा उसका जोर से धक्-धक् करने लगा । बेटी क्यों रोती है ? हाय मैं अभागिन..... । बीस वर्ष की..... । व्याह..... !

ऐसे टूटे-फूटे भाव पलक-पलकते उसके मन में आए ।

बेटी तब तक संभल चुकी थी । आँसू उसने पोछ दिए, और इसने की चेष्टा करने लगी ।

“क्यों बेटी”, दयावती ने स्नेह-सिक्त स्वर में पूछा—“क्यों रोती है ?”

कुमारी ने मुस्किराकर कहा—“कुछ नहीं मा, कुछ नहीं—छिः ! मैं कैसी पगली हूँ !”

“बता तो; ना ! मैं पूछे बिना नहीं मानने की । क्यों रोती है ?” दयावती ने अपने रुखे हाथ बेटी के गालों पर फेरते हुए कहा ।

बेटी खिलखिलाकर हँस पड़ी, और बोली—“अरी मा, कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं ! मैं बड़ी पगली हूँ ।”

क्षण-भर ठहरकर मा ने अपना औरसुख शांत करने की चेष्टा की, पर न हो सका, और वह ललककर बोली—“ना, मेरी जाडो, बता दे !”

बेटी ने मा का आग्रह समझा, पर कुछ कहती-कहती रुक गई, और मुस्किराकर बोली—“मा, शर्म लगती है !”

मा ने उत्तर में केवल “हिशू—” कहा था कि बेटी ने कड़ा जी करके कह डाला—“इस चित्र को देखकर—”

“क्या ?”

“इस चित्र को देखकर” उसने कहा—“सुरे स्कूल की साथियों की याद आ गई थी ! देख तो, मैं कैसी पगली हूँ । देख, यह सुशीला है, यह सरला है, यह विद्या है, यह करुणा है.....।”

चित्र पर उँगली रख-रखकर कुमारी लड़कियों के नाम बता रही थी । ‘करुणा’ का नाम लेते ही दयावती ने कहा—“करुणा ? वही करुणा ?”

“हाँ, वस, इन्हीं की याद आ जाने से.....।”

“इधर तो बहुत दिनों से करुणा आई नहीं ।.....शायद उस पर भी हमारी गरीबी.....।”

“ना मा, करुणा वैसी नहीं है, उसके मन में ऐसा भाव नहीं आ सकता ।”

“हाँ, यों तो लड़की चुरी नहीं है, पर बेटी, समय की गति विचित्र है !”

“कुछ भी हो मा, करुणा का स्वभाव बड़ा पवित्र है, वह मुझे यहन समझती है। बात यह है कि परीक्षा से निवृत्त चुकी है, शायद कहीं घूमने चल दी हो, या और किसी काम में फँसी हो।”

मा करुणा के विषय में इतनी उदार बनना नहीं चाहती थी। इतने दिन से नहीं आई, यह अवश्य उसका दंभ है ! अमीर की बेटी है, कॉलेज में पढ़ती है, भला दंभ क्यों न करेगा ? इस समय उसे अपनी अभागिनी सखी की याद कैसे आ सकती है !

मनुष्य कितना शीघ्र अनुदार बन जाता है !

पर बेटी उसकी बकालत कर रही है, और इससे कुछ ही पहले न-जाने क्यों रो चुकी है, अतएव अधिक विरोध करके उसका दिल दुखाना मा ने उचित न समझा, और बात टाल दी।

तब दोनों मा-बेटी कोठरी से बाहर आईं।

सामने ही द्वार था, और सीधी गली में से होकर नज़र सड़क पर पहुँचती थी। सहसा दोनों ने देखा, गली के नुकड़ पर, सड़क के किनारे, एक बढ़िया घोड़ा-गाड़ी आकर खड़ी हुई।

करुणा ! करुणा ! करुणा की गाड़ी है।

संय-भर बाद ही गाड़ी का द्वार खोलकर करुणा स्वयं उतरती दिखाई दी।

एक सुशिक्षिता, अमीर की बेटी का साधारण क्लैशन था। लेंडो-ग्रे, मोज़े, रेशमी साड़ी, जैकेट और कलाई पर घड़ी !—गाड़ी से उतरकर जल्दी-जल्दी गली में घुस आई, और निस्तंकोच भाव से, घुशी से खिजती हुई, उस गंदे, बदबूदार, धँधरे घर के द्वार पर पहुँची।

मा-बेटी अब तक खड़ी उसकी तरफ़ ताक रही थीं। अब कुमारी आगे बढ़ी, और हँसकर उसकी तरफ़ देखा।

करुणा जलदी-जलदी आगे बढ़कर एकदम कुमारी से लिपट गई !
 वाह ! कैसा अद्भुत स्नेह है ! हमें तो सचमुच अचरज हुआ ।
 कुमारी की धोती कैसी मैली, गंदी और अस्त-व्यस्त है, और करुणा
 की रेशमी साड़ी कैसी नई, कीमती और झल-झल करती है ! कैसे,
 बिना हिचके, वह लिपट गई ! कम-से-कम कपड़ों का तो खयाल
 रखती !

करुणा ने सखी को छाती से लगाकर इतने जोर से खींचा कि
 कुमारी का दम घुटने लगा, पर करुणा के इस पागलपन को सहने
 की वह अभ्यस्त है, इसलिये कुछ कह न सकी ।

जब दोनों सखी अलग हुईं, तो दयावती ने कहा—“करुणा, बड़ी
 उमर है तुम्हारी ; अभी हम तुम्हें ही याद कर रहे थे ।”

करुणा ने दयावती की बात का जवाब न दिया, और सखी से
 पूछा—“क्यों री कुम्हो ! बता, क्या कह रही थी ? क्यों याद कर
 रही थी ?”

कुमारी मुँह से कुछ न बोली, सखी की तरफ देखकर बस, धीरे से
 मुस्किरा पड़ी । दयावती ने कहा—“यही कह रहे थे कि तुम बहुत
 दिन से इस तरफ आई नहीं ।”

करुणा ने कुमारी की ठुड्डी पर उँगली से छुआकर कहा—“क्यों
 री, यही बात थी ? मेरी याद आखिर तुम्हें आई ?”

कुमारी ने फिर उसी प्रकार मुस्किरा दिया ।

दयावती बोली—“याद क्या, हम तो कुछ बुरा भी मान गए थे,
 समझा, शायद.....।”

सहसा कुमारी ने मा की तरफ देखकर उसे चुप कर दिया ।

करुणा तो सखी के मुँह से ही कुछ सुनना चाहती है । करुणा तो
 सखी की गंभीरता भंग करना चाहती है । करुणा तो सारा अभिमान
 अभियोग सखी से ही सुनने को उत्सुक है । वह दयावती की बात

का उत्तर दे कैसे ? और, उसे इसका होश कहाँ ? उसने दोनों हाथ सखी के कंधों पर रखकर जोर से उसे झटका, और क्रोध का प्रदर्शन करते हुए कहा—“क्यों री ! घुरा मान गई थी ? क्यों ? रुठ गई थी ? बोल.....।”

अब की बार कल्या को उत्तर न मिल सका । कुमारी तो उसी प्रकार मुस्किराकर रह गई, और दयावती वहाँ से चली गई । “कैसा दंभ इस लड़की को है !” दयावती ने सोचा—“मैं इसनी बार इससे बोली, और वह मेरी बात का उत्तर तक नहीं देती है !”

दयावती असंतुष्ट होकर चली गई है ।

अब कुमारी ने कल्या का हाथ पकड़ा, और दोनों सखियाँ सोने की कोठरी में पहुँचीं ।

विस्तर सरकाकर कल्या पहले ही खाट पर बैठ गई । फिर दूसरी चारपाई पर कुमारी भी बैठने लगी ।

“न न, इधर, इधर !” कल्या ने उसे खींचकर, उसी चारपाई पर, अपने घरावर, बैठा लिया ।

सखी की यशस्व में हाथ डालकर कल्या ने उसके कान पर मुँह लगाया, और धीरे-धीरे कहना शुरू किया—“ओ री, मेरी मानिनी कुम्भो ! न, न ! भूलती हूँ, कुमारीदेवीजी, कृपा करके, अपना मान भंग कौजिए, और स्वस्थ होकर मेरी कैफियत सुनिए । इसने दिन तक न जाने का अजिबोग जो देवीजी, आपने मुझ पर लगाया है, वह मैं स्वीकार करती हूँ । और, यह कहकर आपसे समा-प्रार्थना करती हूँ कि मेरी परीक्षा का फल था गया है, और आपकी यह अकिंचन दासी फ्रस्टे-टिर्वाज़न में पास हो गई है.....।”

कुमारी ने उछलकर सिर घुमाया, और कहा—“अच्छा ? वाह ! क्या ?”

कल्या ने अभयानक गंभीरता का प्रदर्शन करते हुए कहा—“देवीजी !

के प्रश्न के उत्तर में सादर, सविनय, सप्रेम निवेदन है कि आज चार बजकर पैंतालीस मिनट पर परीक्षा-फल प्रकाशित हुआ है, और सुनते ही मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूँ ।”

कुमारी कौतुक-दृष्टि से सखी के गोरे मुख को ताकती हुई निश्चल, निर्वाक बैठी रही ।

“आप्रे, देवीजी की पवित्र सेवा में अत्यंत विनय-पूर्वक नमस्कार के बाद सिर झुकाकर निवेदन है कि आप कल के लिये इस अर्किचन करुणा का नम्र निमंत्रण स्वीकार करें ।”

अब कुमारी खिलखिलाकर हँस पड़ी, और जवदी-से दायाँ हाथ उसके मुँह पर रखते हुए बोली—“अरे, बस, हो चुका ! अब यह अपना गंभीर वक्तव्य समाप्त कर !”

“आशा है, गंभीरता की प्रतिमूर्ति कुमारीदेवीजी मेरी गंभीरता का अवलोकन कर मुझसे प्रसन्न हुई होंगी, और.....।”

“फिर वही ! बस, हो चुका !”

“गंभीरता का अवलोकन करके मुझे देवीजी की पवित्र वाणी
.....”

कुमारी ने जोर से उसका मुँह मीच दिया ।

“अरे ! छोड़ो, छोड़ो ! मेरा दम घुटता है !” आखिर करुणा ने कहा ।

“बोल्, अब तो शैतानी न करोगी ?”

“न, बस छोड़ो, मान भंग हो गया, अब नहीं...”

हाथ हटा लिया गया, खौंस-झोंककर करुणा स्वस्थ हुई, और फिर ताजी बजा-बजाकर जोर से हँसने लगी ।

मौह चढ़ाकर कुमारी ने, अधिकार-पूर्ण स्वर में कहा—“मानेगी नहीं ? क्यों ? जा, फिर—”

कहकर कुमारी सरककर एक फुट पीछे हट गई ।

आगे सरककर कल्या फिर उससे जा सटी, और बड़ी शोखी से उसकी तरफ देखती हुई बोली—“अब कहो ! भागो, कहाँ भागती हो !”

अब कुमारी ने मन-ही-मन इससे हार मानी, और कहा—“अच्छा बोज, कितने नंबर मिले ?”

कल्या ने सीधी लड़की की तरह नंबर बता दिए ।

कुमारी ने धीरे से कहा—“बधाई !”

कल्या ने नेत्रों में बचपन और गर्व का छिछोरा हास्य भरकर कहा—“थैंक्यू ।”

“अब ?”

“क्या ?”

“आगे पढ़ेगी ?”

“मेरी इच्छा तो है.....।”

“परंतु... ?”

“पिताजी चाहते हैं...”

“व्याह कर दिया जाय । क्यों ?”

“हाँ !” पहले कंपकर और फिर सहसा हड़ और गंभीर होकर कहा ।

“कौन भाग्यशाली हैं वे ?”

“बताऊँ ?”

“हाँ ।”

कल्या ने चपलता से चारो तरफ़ देखा, और फिर कुमारी के फाद के पास मुँह लो जाकर कहा—“प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र महोदय ।” अनौ फिर उसने सखी की गोद में मुँह छिपा लिया । कुमारी ने आप-नहीं आप कहा—“...एम्० ए०, यो० टी०” ये प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र महोदय की डिग्रियाँ थीं ।

(४)

दो मिनट तक करुणा उसी प्रकार सखी की गोद में मुँह छिपाए पड़ी रही। तब कुमारी ने कहा—“अच्छा अब उठो, लज्जा हो चुकी !”

करुणा तब भी न उठी, तो कुमारी ने मधुर विरक्ति का प्रदर्शन करते हुए कहा—“धरे रे ! छिः ! उठ तो सही; देख, तुझे मेरी इस गंदी धोती में बाल नहीं आती ?”

कहकर उसने जबर्दस्ती उसका सिर ऊपर उठाया।

असल में करुणा ने जैसी लज्जा का प्रदर्शन किया था, उतनी लज्जित वह हुई न थी। आधुनिक समय की बी० ए०-पास चंचल लड़की न भावी पति का परिचय लेने या नाम बताने में संकोच करती है, न व्याह के संबंध में बात करते हिचकती है। करुणा के व्यवहार में बड़ी भारी कृत्रिमता थी, और कह सकते हैं, बड़ी भारी दुर्बलता भी। सखी के साथ कपट या कृत्रिमता का व्यवहार करने से, संभव है, कभी या तभी, उसे खेद हुआ हो, और उसने अपनी दुर्बलता को महसूस किया हो, पर हम तो यह समझकर कि उसकी कृत्रिमता में कोई दुर्भाव न था, स्वयं उसे क्षमा कर देंगे, और आपसे सिफारिश करेंगे कि उसे क्षमा कर दें। इस कृत्रिमता में जो कुछ था, मैं उसे जानता हूँ, और जब मैं करुणा की वकालत कर रहा हूँ, तो मेरा धर्म है, मैं उसे आपको बता दूँ। उसमें गंभीर सखी को कौतूहल-पूर्ण बनाकर इस संबंध में सुझाव करने की अप्रत्यक्ष, अव्यक्त और अज्ञात प्रेरणा का भाव था।

उसकी इच्छा पूरी भी हुई। कुमारी ने कहा—“तब तो तुम बड़ी सौभाग्यशालिनी हो !”

“सच ?” करुणा ने शैतानी से गद्गन मोड़कर, आँखों में सुस्कि-

कुमारी हँसी, और फिर गंभीर स्वर में बोली—“कैसे ? बनाती क्यों हूँ ?”

“और नहीं तो क्या ; भला बताओ, क्यों सौभाग्यशास्त्रिणी हूँ ?”

कुमारी ने उसी गंभीर स्वर में कहा—“प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र ! प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र एम्० ए०, बी०टी०—प्रोफ़ेसर साहय बड़े भारी विद्वान् हैं !”

“अच्छा ? बड़े भारी विद्वान् हैं ? उँह ! जाने भी दो ! तुम क्या उन्हें जानती हो ?”

“हाँ ।” कहकर कुमारी ने पास की आलमारी खोजी, और किसी पत्रिका के कुछ अंक बाहर निकाले ।

“देखो,” उसने कहा—“प्रोफ़ेसर साहय कभी-कभी इस पत्रिका में लिखते हैं । कई वर्ष से मैं उनकी लेखनी का रसास्वादन करती आई हूँ । ये लेख ही उनकी प्रकांड विद्वत्ता के प्रमाण हैं । ले देख !”

कुमारी ने कई शीर्षक करुणा को दिखाए—‘जातियों का इतिहास’, ‘वेदों की प्राचीनता’, ‘मनु का पक्षपात’, ‘पुराणों का अलंकार’, ‘इस्लाम के धर्म-ग्रंथ’ इत्यादि ।

“यस-यस,” करुणा ने कहा—“देख ली विद्वत्ता ! बंद करो इन्हें ।.....अरे ! यह क्या ?”

करुणा की दृष्टि सहसा एक ऐसे लेख पर पड़ी, जिसके चारो तरफ़ खाल पेंसिल से निशान किया गया था । उसने झपटकर वह अंक उठा लिया, और पढ़ते हुए बोली—“श्रीमती कुमारी, अवज्ञा ! यह श्रीमती कुमारी क्या देवीजी हो हैं ? हाँ, क्या लिखती हैं—‘गीता की व्यापकता’, याद रे, मेरी लेखिका ! देखूँ-देखूँ.....”

कहते-कहते उसने और भी दो-एक अंक उठा लिए, कई में खाल पेंसिल से चिह्नित, श्रीमती कुमारी-लिखित लेख मौजूद थे ।

तब यह बात खुली। कुछ समय से कुमारी ने लिखना आरंभ किया है। इसी पत्रिका के द्वारा प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र को वह जानती है, इसी पत्रिका में उसने उनके लेख पढ़े हैं, और उन्हीं लेखों के द्वारा उसके हृदय पर उनकी विद्वत्ता का सिका जमा है।

सब सुनकर करुणा ने न-जाने क्या सोचा, और कहा—“अच्छा, कल किस वक्त चलोगी?”

“अरे! कहाँ?” अब उसे निमंत्रण की बात याद आई।

“मालूम होता है, फिर गंभीर बनना पड़ेगा!” करुणा ने निराशा से सिर हिलाते हुए कहा।

“ना, मुझे याद आ गया। अच्छा, कैसा निमंत्रण देती हो?”

“देसी समझो!”

कुमारी हँस पड़ी। बोली—“ना, मैं यह पूछती हूँ, किसलिये कल का निमंत्रण देती हो?”

“इसलिये कि एक महीना इस अर्किचन दासी के न आने के कारण देवीजी जिस प्रकार रुष्ट हो गई, उसी तरह चार साज से अपनी कुटी को उनकी चरण-रज से पवित्र होते हुए न देखकर, ऐसा न हो, वह भी असंतुष्ट होकर रो पड़ने का मौका पा जाय।”

“धत्!” कहकर कुमारी हँस पड़ी।

“धत् नहीं, यह बताओ, मुझे आना पड़ेगा या केवल गाढ़ी आ जाने से ही देवीजी संतुष्ट होकर चली आएंगी?”

“वाह!”

“और यह बताओ कि किस समय चलने में देवीजी को सुविधा होगी?”

“मगर.....”

“और देवीजी को अगर कष्ट न हो, तो इसी समय चल सकती।”

“अरे सुन तो पगली,” कुमारी ने बीच में उसे रोककर कहा—
“मेरी बात भी तो सुन !”

करुणा ने भली जड़की का-सा मुँह बनाकर कहा—“कहो ।”

“मुझे चलने में तो कोई इनकार नहीं, पर मा...”

“अरे ! क्या मा रोकेगी ?”

“शायद अकेली न भेजे.....”

अण-भर को करुणा के मुख पर झरा-सा खिसियानपन दिखाई दिया, पर तुरंत ही सँभलकर बोली—“वाह ! क्या मा को निमंत्रण न देंगी ? क्या मैं ऐसी बेवकूफ हूँ ?”

वह कितनी बेवकूफ है, इसे वह और कुमारी—दोनों ही—अच्छी तरह जानती हैं, पर यह बात बताई तो नहीं जा सकती न ! अतएव कुमारी ने कहा—“हाँ, अगर मा कहे, तो.....”

“तो क्या मा नहीं कहेगी ?”

“यह मैं क्या जानूँ !”

“वाह ! कैसे नहीं कहेगी ? मा को कहना होगा, और चलना होगा !” कहकर करुणा झट से खड़ी हो गई, और ‘मा ! अरी मा !’ पुकारती हुई रसोई-घर की तरफ दौड़ी ।

कुमारी कुछ और बातें करना चाहती थी । अतः उसने उसे रोकने का प्रयत्न किया । पर वह तो अपनी मूर्खता और खिसियानपन का प्रतिकार शीघ्र-से-शीघ्र करना चाहती है । वह अब यहाँ कैसे ठहरे !

मा ने देखा, बीस वर्ष की छोटी करुणा, जिसके दंभ से असंतुष्ट होकर वह रसोई-घर में चली आई है, ‘मा ! अरी मा !’ पुकारती, व्यग्रभाव से, उसी तरफ था रही है, और जूता पहने रसोई-घर में घुसकर चौका झराय कर देना चाहती है.....

मा बहुत असंतुष्ट है, यहाँ तक कि अभी-अभी उससे चलती बार न बोलने का निश्चय कर चुकी है, पर यह तो चौंके का स्वाद...

“अरे, वहीं पर रह ! वहीं रह !”

“अच्छा, तो यहाँ आ ।” बेशक वूट पहने उसे रसोई-घर में नहीं जाना चाहिए ।

कैसी अष्ट लक्ष्मी है ! छिः ! ज़रा लज्जा नहीं ! जूता पहने रसोई-घर में घुस-आना चाहती है । ज़रा सब्जीका नहीं ! बड़ा अहंकार है ! कॉलेज में पढ़ती है न ! अमीर की बेटी है न ! मा कोशिश करके कुछ ऐसा भावे मन में पैदा करना चाहती है, पर कैसे करे ?— नहीं कर पाती, नहीं कर पाती, वहिक न-जाने कहाँ से परम पवित्र मातृ-स्नेह उसके हृदय की तरफ़ दौड़ा आ रहा है ।

आखिर किया—आत्म-समर्पण किया, और मा उठकर रसोई-घर से बाहर गई ।

मुश्किल से बाहर क़दम रक्खा कि दौड़कर कहाँ उसके गले से लिपट गई, और उसकी छाती पर मुँह रखकर रोने स्वर में कहने लगी—“मा ! मा !”

वह स्नेह-तरल बनकर आँखों में उछल आया, और कंठ गद्गद हो गया । मा ने कहा—“क्या है ?”

“अरी मा, कल कुमारी को लेकर हमारे घर आना !”

“क्यों ?”

“यों ही; मा तुम्हें बहुत याद करती है । कहती थी—मेरे हाथ-पैर हो गए, नहीं मैं ही आती । अरी मा, तू कल ज़रूर, ज़रूर, ज़रूर आइयो, और कुमारी को भी लाइयो ।”

“तो तेरो मा का जो कैसा है ? अब तो अमनाजी भो नहीं आती है ।”

“अरी मा, वह तो मृत्यु-शय्या पर पड़ी है, हाथ-पैर बेकार हो गए हैं, घब शिथिल हो गया है । केवल मुँह से बोल सकती है । डॉक्टर लोग कहते हैं, कुछ दिन की मेहमान है ।”

जी में तो मा के यह आया—कहूँ, कल क्यों, अभी चलूँगी। पर यह तो कल को....। बोली—“अच्छा आऊँगी।”

“हाँ, कल गाड़ी आ जायगी। बोलो, किस वक्त आओगी?”

“दस-ग्यारह बजे भेज देना।”

“अच्छा। कुमारी को भी साथ लाना।”

“कुमारी को? यह कैसे हो सकता है? घर अकेला जो रहेगा?”

“अरी मा, तुम दोनों को कल का निमंत्रण देने आई हूँ। मा ने कहा है। वहीं खाना होगा।...”

मा कुछ पूछना चाहती थी कि चौककर पहले सिरिसले में ही करुणा ने कहा—“.....और हाँ मा, सुन तो, मैं पास हो गई।”

“पास हो गई? एम्. ए. में?”

“ना, बी. ए. में।”

दयावती ने करुणा के सिर पर हाथ फेरा, और कहा—“जीती रह।”

पर साँ ही उसके मुँह से एक ठंडी साँस निकल गई। हाय! आज मेरी कुमारी भी बी. ए. पास कर लेती!

करुणा ने कहा—“तो मा, आओगी? बोल।”

“आऊँगी।”

“कुमारी को लेकर?”

“सबका!”

धन्य ईश्वर! काम आसानों से बन गया!

अब उस अभुत, चपल लड़की ने गला छोड़कर मा के पैर पकड़ लिए।

“अब...! यह क्या?”

“मा! मैं बड़ी पगली हूँ।”

“यह तो है ही।”

“तो मुझसे बड़ी भूल हुई ! क्षमा कर ।”

“यह और पागलपन ! कैसी क्षमा ?”

“मा ! सच बता, नाराज तो नहीं ?”

“दिशू ! भाग ! नाराज कैसी ?”

“बस तो—”

तब मा के चरणों में अत्यंत भक्ति-भाव से मस्तक मुकाकर करुणा कुमारी के साथ फिर सोने की कोठरी में घुस गई ।

मा हँसकर, संतुष्ट होकर रसोई-घर में गई ।

“अब तो आवेगी न ? बोल ।” कोठरी में घुसते ही खुशी से उछलकर करुणा ने पूछा ।

“देखो, शायद ।”

“ऐ ! अब भी ‘देखो, शायद ?’ क्यों ?”

“अच्छा, आऊँगी ।”

“हाँ, तो ठीक । वना मुझे किसी और मंत्र से काम लेना पड़ता ।”

“अच्छा ! और मंत्र क्या ?”

“बस, अब न बताऊँगी ।”

“अच्छा, तो मेरे आने का भी निश्चय नहीं ।”

“अच्छा ! अच्छा ! अच्छा ! बाबा सुन ! कान में सुन !”

कान में कहा गया—“परम विद्वान् प्रोफेसर नकुलचंद्र महोदय से भेंट होगी ।”

“सच ?”

“सच । कहो, अब तो निश्चय है ?”

“अच्छा ।”

कुछ बातें और भी हुई थीं, पर सखियों का गुप्त वार्तालाप सुनकर या आपको सुनाकर हम अपनी सर्वज्ञता का दुरुपयोग नहीं करेंगे, इस-लिये कानों में उँगली रूँसे लेते हैं ।—और जोर से—और जोर से—!

पर फिर भी कल्या के एक गंभीर प्रश्न का सारांश—“तुम्हारा क्या कह होगा ?” और कुमारी के उत्तर का अभिप्राय—“जब भाग्य में होगा ।”—हमारे कानों में पड़ ही गया ।

जीजिए, अब कल्या ठठ खड़ी हुई है । शायद गुप्त बातें समाप्त हो गई हैं । अब कानों से उँगली हटा लें ।

यह क्या ? कल्या कह रही है—“छिः कुम्भो ! भाग्य किस चिड़िया का नाम है ! सिर्फ मन समझाने को एक बहाना !..... भाग्य या कर्म कुछ नहीं ! जो कर लिया जाय, वह कर्म, और जो हो जाय, वह होनहार या भावी है ।”

कुमारी के मुख पर गंभीरता और उदासीनता का भाव है, और वह ठठते-ठठते अन्वयमनस्क भाव से कह रही है—“जीजो, यह बात इतनी जल्दी से कह देने की नहीं है !”

(५)

रात से ही दयावती को हल्का बुझार था । इस बुझार की कुछ परवा न कर, सुबह गजरदम, वह जमना नहाने चली गई । खूब गोते लगा-लगाकर नहाई, और घर लौटते-लौटते भयानक ज्वर का प्रकोप हुआ ।

कुमारी ने मा को यह दशा देखी, तो एक बार घबरा गई, फिर स्वस्थ होकर रोगी की परिचर्या में लगी । क्या करे ? डॉक्टर-वैद्य को बुलाने के लिये पैसा नहीं, ढोली में बैठकर किसी तरह वैद्य परमानंद के दवाखाने तक कोई मा को ले जाय ! हाय ! हिंदू की वयस्का कुँभारी लड़की ऐसा दुस्साहस कैसे करे ?

कुमारी ने एक बार विलककर कहा—“मा ! मैं किसी के हाथें ढोली में ला लेती हूँ ; चल, वैदजी को दिखा दूँ ।”

मा कपड़ा थोड़े, सिर बाँधे, अचेत-प्राय पड़ी थी । हाथ हिलाकर, खोप स्वर में, बोली—“मा ! चिंता न कर, मैं अभी अच्छी हुई जाती हूँ ।”

“मा, तुम्हें बुझार.....”

“तू पहन तो सही, बुझार मुझे अब नहीं है।”

कुमारी ने धोता-जाकट पहन ली।

इधर दयावती ने एक बाढ़ामा रंग का लँहगा और सफ़ेद, मैथी चादर अपने लिये छुँटी, और कहा—“अब इन बाकी कपड़ों को संदूक में रख दे।”

खाट से उतरकर मा कपड़े बदलने लगी।

हाय ! कैसी दुर्दशा है !

एक दिन वह था, जब नौकर-नौकरानियों को ऐसे कपड़े पहने देख दयावती लजाती थी, और एक यह आज का दिन है कि खुद उन्हें पहनने में उसे कोई संकोच नहीं होता। उसके अंतर्प्रदेश में कैसी आग जल रही थी, और उसका हृदय किस प्रकार हाहाकार कर रहा था, यह मैं कैसे बताऊँ ! पर बड़े भारी अचरज और कौतुक के साथ यह तो मुझे बताना ही पड़ रहा है कि उसके मुख पर उस हाहाकारमयी अग्नि की तनिक-सी छाप दिखाई न देती थी, और उसके आचरण में सूक्ष्म-सा विकार भी नहीं छटकता था। हाँ, एक बात जरूर नोट करने योग्य थी। रह-रहकर वह छिपी नज़रों से बेटी के मुख को देखती थी, मानो उसके मनो भावों को पढ़ने या समझने की चेष्टा कर रही है।

और, जो कुछ उसने समझा, ठीक समझा। चार वर्ष से कुमारी लगभग कैदी की तरह इस गंदे घर में बंद है। इनी-गिनी बार वह बाहर निकलती है। आज सखी से मिलने, घर से बाहर निकलने और.....

और एक ख़ास व्यक्ति से मिलने की जैसी उमंग उसके मन में थी, वह क्या मुख पर फूटे बिना रह सकती थी ? कदापि नहीं। कुमारी चाहे जितनी छिपाने की चेष्टा करे, अथवा मा की तकलीफ़ के

कारण चाहे जितना अपना मन समझाने का प्रयत्न करे, इस जमाना देखी हुई चुड़िया और इस सर्वज्ञ लेखक की आँख से भला कब असल बात छिपी रह सकती है ? उसका वह बार-बार का इनकार और फिर सहसा भाग-दौड़ का उल्लाह भला सारी कैफियत बयान करने के लिये क्या काफ़ी नहीं ?

शंग-शंग शिथिल हो रहा है, हाथ-पैर टूट जा रहे हैं, पर हाथ ! क्या बेटी का इतना-सा मन रखने काबिल भी मैं अभागिन नहीं ?

कोचवान दो बार आवाज़ दे गया है । मा-बेटी जल्दी-जल्दी कपड़े पहनने लगीं । कमज़ोरी और शिथिलता के कारण मा का शंग-शंग काँप रहा है । कुमारी ने कहा—“मा, मत चलो, फिर कभी चलेंगे । तुम्हारा उम्र बढ़ जायगा ।”

मा ने कुछ उत्तर न दिया । हाँ, छिपी नज़र से एक बार फिर बेटी का उदास चेहरा देख लिया ।

दोनों धीरे-धीरे आगे बढ़ीं । बेटी का सहारा लेकर दयावती किसी प्रकार द्वार तक आई, और लंबी-लंबी साँसें बेटी, निढाल होकर बैठ गई ।

“क्या हुआ ? क्या हुआ मा ?”

“ओर्र ! परमात्मा, चमा ! ना बेटी, मेरे बस का काम नहीं, मुझसे नहीं चला जायगा ।”

बेटी ने ओर-दृष्ट होकर कहा—“मैंने कहा न था,” और तब वह मा को सहारा देकर घापस सोने की कोठरी में आई ।

बिना कपड़े उतारे दयावती स्नाट पर पड़ गई ।

कुमारी ने ठीक तरह बिटाकर उसे उक दिया ।

कोचवान ने तीसरी बार आवाज़ दी । कुमारी बाहर जाने लगी । सहसा मा ने आँखें खोज दीं । धीरे से बोली—“बुन तो बेटी !”

“क्या ?”

“कहाँ जाती है ?”

“कोचवान से कह दूँ—जाय !”

ओफ़ ! कैसी छिपी हुई निराशा, कैसी अव्यक्त वेदना, कैसी अज्ञात विवशता उसके स्वर में थी । मा का हृदय एक बार कॉप उठा ।

धीरे से बोली—“मेरी एक बात मानेगी बेटी ?”

“क्या मा ?” कुमारी ने अचरज से पूछा ।

“तू चली जा ।”

“कहाँ ?”

“कहणा के घर ।”

“मैं ?—और तुम ?”

“मैं अब चंगी हूँ । एक जोटा पानी मेरे पास रख जा, शाम तक जोट आइयो । कोई चिंता नहीं । जा ।”

कुमारी जग-भर निस्तब्ध खड़ी रही, फिर बोली—“ना मा, यह कैसे हो सकता है ! फिर कभी चलेंगे ।”

“नहीं, अमी जा, बेचारी लड़की इतना आग्रह कर गई है । अब न जाने से दुखी होगी । तू जा, कहना—मा को बुझार था । जा । कोई भी न जाय, यह अनुचित है ।”

“ना मा,” कुमारी ने संघर्ष में पड़कर कहा—“मैं न जाऊँगी । बुरा मानने की क्या बात है । कहणा आवेगी, तो समझा दूँगी ।”

“बेटी, जैसा कहती हूँ, वैसा कर । यही स्नेह-पूर्ण लड़की है । उसकी बात टाकते मुझसे नहीं बनता । देख तो, कितना प्रेम हम लोगों से करती है । जा, तू चली जा ।”

“नहीं मा, मैं नहीं.....मैं उसे समझा दूँगी ।”

“खैर, तेरी मर्जी; मगर मुझे झूठा बनना पड़ेगा ।”

बेटी लोच में पड़ गई—“झूठा बनना पड़ेगा ! क्यों ?”

“कल मुक्तसे वचन ले गई है।”

“क्या बताऊँ मा, तुम्हें इस अवस्था में छोड़कर जाते नहीं बनता।
उपादा कहोगी, तो.....”

“हाँ, चली ही जा, जल्दी लौट आइयो।”

“अच्छा.....”

“हाँ, एक लोटा पानी मेरे पास रख जा।” मा ने कहा—“और देखियो—” जब लोटा पानी रखकर घेटी जाने लगी, तो बोली—
“करुणा की मा बहुत बीमार हैं। मेरी तरफ से राजी-खुशी प्रार्थियो, और कहियो, बुझार से जाचार हो गई, नहीं मैं ही आती। फिर किसी दिन आऊँगी। मुझे उनकी बीमारी का हाल सुनकर बड़ा दुःख हुआ है।”

“अच्छा।”

“हाँ, जरा जल्दी लौ—”

कोचवान की चौथी आवाज़ सुनाई दी, और कुमारी जल्दी से बाहर निकल गई।

इसे कुमारी की कमज़ोरी तो मानना ही पड़ेगा! आपकी क्या सम्मति है?

(६)

गाड़ी घड़-घड़ करती कोठी पहुँच गई।

बड़ी आलीशान, बड़ी सुंदर और बड़ी सुहावनी जगह है। गोल बरान्दा है, ऊँचे-ऊँचे कमरे हैं, बाहर बगीचा है, सीढ़ियों पर फूलों के गमले हैं। हवा चबलती है, तो ऐसा लगता है, मानो सुगंध की वर्षा हो गई।

जब करुणा के पिता ने यह कोठी खी थी, चार साल हुए, कुमारी मैट्रिक में पढ़ती थी, तब गृह-प्रवेश की रस्म में आई-आई वह अब आई है। काफ़ी परिवर्तन हो चुका है। एक तरफ नौकरों के जिसे

कच्चा मकान बन गया है। गाढ़ी है, तो अस्तबल कैसे न बनता। बगीचा तैयार हो गया है; पेड़ फलों से लदे पड़े हैं, अंगूर की बेक बढ़कर बरांडे के दर्वाजों पर झुकी पड़ती है।

जिस ठरसाह से आई थी, कुमारी के मन का वह ठरसाह सहसा नष्ट हो गया। पर देखिए, ठंडी साँस उसके मुँह से नहीं निकली, एक प्रकार का रोव और संकोच उस पर छा गया, और वह कुछ परेशान-सी दिखाई देने लगी।

गाढ़ी अहाते में घुसी ही थी, और पहियों की आवाज़ मुश्किल से भीतर पहुँची होगी कि हिरनी की तरह छलाँग भरती, उछलती-कूदती करुणा बरांडे में दौड़ आई। सिर खुला हुआ है, बाल अस्त-व्यस्त हैं, शरीर पर एक गुलाबी, रेशमी साड़ी है, पैरों में पतला स्लीपर है, और हाथ न-मालूम किस चीज़ में सनकर काले हो गए हैं; गाढ़ी की आइट सुनकर हाथ धोने तक का सत्र उसे न हुआ।

“अरे मा”—गाढ़ी के पास पहुँचकर उसने पूछा—“अम्मा नहीं आई?”

“नहीं”, कुमारी के स्वर में अपने घर के उस पहले दिन के अधिकार-पूर्ण स्नेह की जगह कुछ संकोच और एक प्रकार की दबी हुई नम्रता थी। “सहसा आज उसे ज़रूर चढ़ आया। दक्षिण में भी नहीं आ रही थी, उन्होंने ज़िद करके भेजा है।”

“खैर!” कहकर यह चंचल लड़की बुढ़िया मा की और उसकी बीमारी की बात भूल गई, और सखी की बग़ल-से-बग़ल मिलाए, उसका हाथ पकड़े, बरांडे की तरफ़ चली।

मा के प्रति करुणा की यह उपेक्षा देखकर, अगधें में जानता हूँ, उपेक्षा न होकर यह उसकी स्वाभाविक लापरवाही, ठरसाह और हर्ष-जनित जिज्ञासा के अभाव का कारण था, कुमारी एक बार अप्रतिम

हुँ। पर अपने उस भाव को प्रकट कैसे करे ? करुणा ने उसके घर जाकर तो ऐसी भूज की ही नहीं है, जो झिड़ककर, ठोंटकर या 'पगली' बनाकर उसे समझा दे, अब तो वह स्वयं उसके घर पर आई है, और घर भी कैसा ?—राजों-महाराजों के मुक्तावले का ! भला इस जगह पेसक-लगी मैली धोती पहने हुए यह दीन-हीन कुमारी कैसे उस वैभवं और ऐश्वर्य की एकमात्र स्वामिनी, श्रीमती रेशमी और कलक-कलक धमकती साड़ी पहने हुए करुणा को रौंदने का साहस करे ?

तीसरी सीढ़ी पर पैर रखते हुए करुणा ने कहा—“बही याद दिखाई तुमने, मुझे तो निश्चय हो गया था, अब तुम न आ.....” कहते-कहते उसने जीभ दबाकर कहा—“मुझे तो बड़ा आश्चर्य हो रहा था, इतनी देर क्यों लगी ?”

कुमारी चुप है । मुँह से शब्द निकालने की उसकी इच्छा नहीं होती । कुछ तो वैसे ही कम-बोला है, पर यहाँ आकर तो जैसे उसकी जीभ पेंढी जा रही है ।

करुणा ने उसकी चाल में धीरे से गुदगुदी की, और कहा—“कहो तो, कुछ बोलो तो, देवीजी, कैसे इतनी देर लग गई ?”

प्रश्न बहुत साधारण था, और स्वयं करुणा भी उसकी तथ्य-हीनता समझती थी पर वह तो कुमारी का मुँह खोलना चाहती है, उसे प्रश्न से क्या राज़ ? प्रश्न में महत्त्व ही क्या था ? अगर कुमारी दुहरा देती—“मा की तकलीफ़ के कारण मैं आना न चाहती थी; उसने जब बहुत आग्रह किया, तो आई हूँ ।” या केवल इतना ही कह देती कि “यों ही देर हो गई”, तो अवश्य बात वहीं-वही रह जाती, और एक ख़ास चीज़ की तरफ़ करुणा का ध्यान आकृष्ट न होता ।

पर कुमारी होश में कहीं है ? देखिए, उसने जड़सादाती जीभ

से क्या मझेदार जवाब दिया है। कहती है—“ज़रा कपड़े-वपड़े पहनने में देर हो गई!”

सहसा करुणा की नज़र कुमारी की धोती पर पड़ी, और पलक मारते उसके चेहरे पर जो भाव प्रस्फुटित हुआ, हम खूब गौर के साथ उसे देखने पर भी आपको समझाने में असमर्थ हैं। दुःख, खेद, दया, सहानुभूति, ग्लानि, घृणा-युक्त नहीं, और लज्जा के समिलित धके से उसका हृदय एकबारगी द्रवित हो उठा, सुख विवर्ण हो गया, और आँखों में आँसुओं के अर्द्धांश या चतुर्थांश चमकने लगे।

हा कुमारी! आज क्या इस मैली, सूती, पुरानी धोती को भी तुम्हें चाव के साथ सम्हालकर देर लगाकर पहनने की आवश्यकता पड़ी?

करुणा के इस प्रकार सहसा चुप हो जाने की तरफ़ अवश्य कुमारी ने लक्ष्य दिया, पर जो भाव उसके मन में उरजित हुआ था, उसे वह न समझी। वह समझी, मेरा अन्यमनस्क भाव देखकर करुणा असंतुष्ट हो गई है।

देखा आपने, अपने घर पर, कुछ दिन पहले तक, जो कुमारी करुणा के गाल पीटकर और उसे रुझाकर भी उसके असंतुष्ट होने की आशंका या चिंता न करती थी, आज, इस समय, कैसी दुर्बल-हृदय और दीन बन गई है?

हाँ, तो ‘करुणा असंतुष्ट हो गई है’! तुम्हें अपना अन्यमनस्क भाव त्यागकर उसकी प्रसन्नता और उमंग में योग देना चाहिए, और उससे अच्छी तरह मिलना-बोलना चाहिए, यह विचारकर कुमारी बोली—“और करुणा—”

आँसुओं के रत्ती-भर जल को पलकों में छिपाकर करुणा ने अपने बड़े-बड़े नेत्र कुमारी की तरफ़ उठाए।

कुमारी पूछती थी—“प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र महोदय...” पर न पूछ

सकी। क्यों न पूछ सकी ? यह आप स्वयं अनुमान कीजिए, या मौला मिले, तो कसम दिलाकर उसी से पूछ लीजिए, हमें तो अपनी सर्वज्ञता पर भी विश्वास नहीं रहा, और इसीलिए हमें जो मालूम हुआ है, उसे हम इस तरह से आपको नहीं बता सकते कि कहीं इस बेचारी कुमारी के साथ अन्याय न हो जाय।

यस, हम तो आपको यही बता सकते हैं कि वह प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र की बात पूछकर करुणा का उपहास करना चाहती थी, पर मरु से बात फेर गई; शायद स्वयं उपहासास्पद बनने का भय हो... या राम-जाने क्या हो... हम यह नहीं कहेंगे।

हाँ, तो कहने लगी—“और करुणा—हाँ, कुमारी मा कहाँ हैं ?”

“मेरी मा ?”—करुणा सहसा कहने को हुई, ‘मेरी मा को तुम अभी घरने घर छोड़कर आई हो’, पर कुमारी के स्वर में प्यार या हास्य का अभाव देखकर उसने सीधो-सादी आवाज़ में कहा—“मेरी मा को तो फ्रांसिज आ गया है, हाथ-पैर बेकार पड़ गए हैं, धड़ थिथक हो गया है। यस, मुँह से थोड़ा-बहुत बोल सकती हैं। क्यों, क्या मिलने चलोगी ?”

कुमारी के ‘हाँ’ कहने पर करुणा उसका हाथ पकड़े हुए दूसरी तरफ़ घूम गई।

एक सजे-सजाए छोटे कमरे में, कोमल शय्या पर, करुणा की मा निश्चल पड़ी हुई थी। पतला-सा, सुंदर पंखा हाथ में लिए एक शुरु-यसना दासी, पथर की मूर्ति की तरह, सिरहाने खड़ी थी, और दर्वाज़े की तरफ़ पीठ किए कोई प्रौढ़ पुरुष, झुके हुए, किसी खोपड़ी का मिश्रण रोगी के मुँह में थूँद-थूँद टपका रहे थे।

दोनों सखियों के पैरों की आदट सुनकर प्रौढ़ पुरुष ने मुँह फ़िराया। कुमारी ने पहचान लिया, करुणा के पिता थे।

अंधविषि पिजा चुके थे। उन्होंने यतन दासी के हाथ में दे दिया,

माथे पर से चिंता और उद्वेग की शिकन दूर की, और कुमारी के प्रणाम करने के पूर्व ही हँसते हुए बोले—“ओहो ! कुमारी बेटी आई हैं । कहो बिटिया, अच्छी हो ?”

कुमारी ने संकुचित होकर नमस्कार किया ।

करुणा के पिता ने सिर पर हाथ रखकर कुमारी को आशीर्वाद दिया, और कहा—“बड़े दिनों बाद आई बिटिया ! कहो, तुम्हारी मा तो प्रसन्न हैं ? अच्छा, क्या इन मा को देखने आई हो ? क्यों, भूल तो नहीं गईं—जब तुम छोटी-सी करुणा के साथ आया करती थीं, और इन्हें हजारों बार ‘मा ! मा !!’ कहकर जल-पान का सामान माँगा करती थीं ? और करुणा की मिठाई छीन-छीनकर खाया करती थीं ? और क्यों, भूखी तो नहीं हो, जब अभियोग उपस्थित होने पर तुम्हारी यह मा सदा तुम्हारे पक्ष में फौजवा देकर न्याय का तिरस्कार और अपने अधिकार का दुरुपयोग किया करती थीं ? क्यों बेटी, वे बातें तुम्हें भूखी तो न होंगी ? कैसे भूल सकती हो ?—अच्छा किया बेटी, जो आ गईं ! मिल जो, बोल जो, अपनी मा को बिदा दे दो, बिटिया, जिसमें अंतिम समय में उन्हें क्षण न हो.....।”

एक स्वर में और एक साँस में उपर्युक्त वक्तव्य समाप्त कर करुणा के पिता, आँखें पोंछते हुए, बाहर चले गए ।

करुणा के पिता रायबहादुर रामकिशोर का थोड़ा परिचय बिना नहीं बनेगा ।

पिता शहर के नामी रईस थे, और झुद बड़े भारी वकील हैं—‘हैं’ क्या, इन्हें भी ‘थे’ ही कहना चाहिए । अब तो एक मुदत से उन्होंने वकाअत छोड़ ही दी है । पिता की भारी जायदाद और दौलत को पुत्र ने खोया नहीं, उसमें वृद्धि की । वकाअत खूब चमकी, और खूब चली । अब उनकी संपन्नता का अनुमान आप इसी से कर लीजिए कि छ हजार रुपया महीना तो जायदाद का किराया ही वसूल होता

था। कई संतानें हुईं, पर अब जे-देकर एक बह करुणा बची है। दो जवान बेटे कॉलेज में पढ़ते-पढ़ते, कई वर्ष हुए, जमना में दूब गए। बड़े के ब्याह की बातचीत हो रही थी। बस, इस सदमे ने उनकी कमर तोड़ दी। ओहू! दो-दो जवान, कढ़ी-से, बेटों का इस प्रकार एक साथ अकाल-मृत्यु को प्राप्त हो जाना—ज़रा सोचिए तो—कैसा भयानक आघात होगा!

दोने को बकील हैं, पर प्रकृति बड़ी भावुक है, बेटों की मृत्यु के बाद पागल-से हो गए, संसार से वैराग्य हो गया, एक घर घर-घर छोड़कर कहीं चल देने की ठानी।

पर जब शोक का वेग इतका हुआ, लोगों ने समझाया, उज्ज्वल-मुखा बेटा करुणा सामने आई, तो बेटों का सारा मोह उन्होंने बेटा में प्रेक्षित कर दिया, और नीरस जीवन को भरसक सरस बनाकर अभाग रामकिशोर दिन बिताने लगे।

शुद्ध तो इस तरह सह गए, पर गृहिणी न सह सकी। बेटा का क्या, उस पर कैसे सबर बाँधे, वह तो पराए-घर की वस्तु है। हाय! दोनो जवान बेटे हँसते-खेलते, जलते चिराग, खिले हुए फूल तो सदा के लिये न-जाने कहाँ बिखीन हो गए! उन्हें अब किस प्रकार पाए!!

पस, माता ने उसी दिन से खाट पकड़ ली।

मेरे पाठकों में जो वयस्क हैं, प्रौढ़ हैं, वृद्ध हैं, वे जानते हैं, इस अवस्था में स्त्री के बिलोड की कल्पना कैसी कष्टकर होती है! वह पुराना स्नेह, वह लवानी के चोचले, वह मान-भंग के अनोखे प्रयोग, वह उन्नत प्रणय के मीठे-मीठे राग, सब अपनी अलग-अलग मूर्ति बनाकर सामने खड़े हो जाते हैं। इस अवस्था में ये सब कैसी संकटमय परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं—भुक्त-भोगी के अतिरिक्त उसे कौन समझ सकता है, और कौन समझ सकता है?

रामबहादुर रामकिशोर सारा वैराग्य, सारा शोक, सारा विवेक

और सारा औचित्य भूलकर अब दिन-रात स्त्री की परिवर्था में लगे रहते हैं। नौकर इतने कि अलग-अलग सबका नाम लें, तो आध घंटा लग जाय, मगर स्त्री को औपधि अपने हाथ से ही पिलाते हैं। डॉक्टर, वैद्य, इस्त्रीम से लेकर स्याने, ज्योतिषी और अघोरी तक की शरण गह चुके हैं। पर सबने हार मानी है। कलकत्ते से कई हजार रुपया खर्चकर एक नामी डॉक्टर बुलाए गए। उन्होंने भी, वृद्ध रामकिशोर की दशा से द्रवित न होकर, साफ़ जवाब दे दिया।

सब तरफ़ निराशा है ! सब तरफ़ अधेरा है !! रायबहादुर राम-किशोर पानी के विच्छेद की आशंका से अधीर हो रहे हैं।

अर्द्धोन्मत्त वृद्ध अब भी पत्नी के इलाज में पानी की तरह रुपया बहाए चला जा रहा है। कुछ लोग हँसते हैं, कुछ दया प्रकट करते हैं, कुछ आँसू बहाते हैं, पर पत्नी पर वृद्ध रामकिशोर का यह उन्मत्त और असामयिक अनुराग देखकर लोग कुछ-कुछ चिढ़ते भी हैं !

और-तो-और, स्वयं उनकी बेटी करुणा, पिता का रुदन सुनकर, समय-समय पर स्त्रीक उठती है।

क्या घटाएँ—कहना ही पड़ेगा, करुणा मा के प्रति लापरवा है, और मा से उचित स्नेह उसे नहीं है। जीवन का प्रारंभिक दस वर्ष का अत्यंत कोमल समय करुणा ने एक ऐंग्लो-इंडियन दाया की गोद में बिताया है। उसका वह समय, जब गर्भ में आरोपित स्नेह, अर्द्धा और भक्ति का स्वच्छ बीज माता की गोद की उष्णता पाकर प्रस्फुटित होता है, ऐंग्लो-इंडियन दाया के स्तन-पान में या कोमल पालने में लोटे हुए बीता था।

हाय ! उसी कुसंस्काराच्छन्न दीर्घ दुर्घटना—जी हॉ, दुर्घटना के कारण लेखक को इस करुणा के व्यक्तित्व में थोड़ी दुर्बलता का दर्शन और चित्रण करना पड़ा, और सच कहें, तो उसी सूक्ष्म दुर्बलता को अपने उपन्यास का माध्यम बनाना पड़ा !

रामकिशोर आँखें पोंछते हुए चले गए, तो कल्या की मा ने टिप-टिपाती आँखें खोलकर कुमारी को पहचाना, और काले, रुखे ओठों पर सुस्मिराहट लाने का प्रयत्न किया।

कुमारी ने आगे बढ़कर रोगिणी के चरण छुए, और द्रवित कंठ से पूछा—“मा, तुम्हारी यह क्या दशा हो गई?”

कुमारी के इस प्रश्न ने दूसरे शब्दों में इसी भाव की अंतर्ध्वनि की—“तुम्हारी वह हट-पुट देह, वह तपे हुए सोने का-सा रंग, वह कमल के फूल-सा विकसित यौवन कहाँ चला गया?”

रोगिणी ने अपना शीर्ष, हड्डीला हाथ धीरे-धीरे ठाढ़ा और निराश-भाव बनाकर उँगली से ऊपर को संकेत किया। अर्थात् कहा—“ईश्वर की यही इच्छा थी!”

कुमारी किसी प्रकार अपने आँसू न रोक सकी, और आँखें पोंछती हुई धीरे-धीरे खाट पर, एक तरफ, बैठ गई।

रोगिणी ने आधा-आधा हँस करके अपना हाथ आगे बढ़ाया, और कुमारी के हाथ पर रख दिया। बोलने की चेष्टा में कुछ देर उसके ओठ हिलते रहे, और तब अत्यंत क्षीण स्वर में सुनाई दिया—“अच्छी तो रही बेटी?”

कुमारी ने कहा—“हाँ मा, मैं तो अच्छी हूँ, पर तुम्हारी यह क्या हालत.....”

फिर कुमारी फिर आँखें पोंछने लगी।

रोगिणी के भाव में कोई परिवर्तन न हुआ, शायद शिथिलता के कारण चेष्टा करने पर भी न हो सका, अथवा चेष्टा ही न की गई। उसी प्रकार स्थिर नेत्रों से ताकते हुए रोगिणी ने तीन-चार बार ओठ हिलाकर कहा—“मा अच्छी है?”

कुमारी ने कहा—“आज सुबह से सुप्तार में पड़ी है। आना चाहती थी। दुर्वाजे तक आई, पर शिथिल होकर गिर पड़ी। कहा

है—‘फिर कभी आऊँगी।’ मा, तुम्हारे लिये वह भी बड़ी चिन्तित है। कहा है—जल्दी अच्छी हो जाओ, जो रोज़ जमनाजी पर भेंट हो सके।”

अब की थार उल्का-पात की तरह रोगिणी के ओठों पर हँसी की रेख दिखाई दी, और उसने फिर उँगली उठाकर ऊपर की तरफ़ संकेत कर दिया।

कुमारी खेद की मुद्रा बनाकर कुछ देर सिर झुकाए बैठी रही। सहसा रोगिणी ने फिर उसी क्षीण स्वर में पूछा—“कह तो बेटी, ब्याह कब होगा ? अरे, शर्माती है !..... करुणा..... !”

रोगिणी “करुणा..... !” कहकर रुक गई, क्योंकि करुणा वहाँ न थी। वह अनुभव-हीन उच्छ्वसल लड़की, अपनी उमंग और प्रसन्नता का मधुर समय वहाँ नष्ट न कर, न-जाने कहाँ, किस क्रिक में, चल दी थी !

रोगिणी का श्याम मुख अधिक श्याम-वर्ण हो गया, और वह प्रायः अचेत हो गई।

दासी ने जल्दी से वस्त्र उनके शरीर पर ढालकर कहा—“ओम् ! फिर घंटे-भर की मूर्च्छा..... !”

(७)

कमरे से बाहर होते ही करुणा आती दिखाई दी। कुमारी उस पर रुष्ट है। छिः ! ऐसी निष्ठुरता !

उस रोप को प्रकट करने का साहस अभी उसमें नहीं आया है, और कृत्रिमता का अभ्यास उसे है नहीं, अतः देखकर उसने एक बार उपेक्षा से मुँह फेर लिया।

करुणा उसकी उपेक्षा और गंभीरता का अत्याचार सहने की अभ्यस्त है, इसलिये इस भाव पर उसने लक्ष्य न दिया।

बाल उसके सँवरे हुए हैं, शरीर पर सुशुभ्रमा बादामी रंग की

साही है, काखरदार कमीज है, और हाथ में नीली 'स्वान' इंक (स्याही) की भरी हुई शीशी है ।

दस क्रदम परे से ही पुकारकर उसने कहा—“चलो न कुम्हो, बारा की सैर करें । ”

कुमारी उसके पास पहुँचकर चुपचाप खड़ी हो गई, और विपाद-पूर्ण नेत्रों से उसका मुँह निहारने लगी ।

सखी की इस अनोखी चितवन से करुणा घबरा गई ।—घूर-घूरकर क्या देख रही है !—इस घबराहट को छिपाने के लिये पगली भट से हँस पड़ी, और स्याही की शीशी की तरफ संकेत करके बोली—“डॉक्टर ने मर्द के लिये जो दवा दी है, उसका रंग इस स्याही से बिल्कुल मिलता है । मैं ज़रा दोनों को पास-पास रखकर फ़ादर को दिखाना चाहती हूँ । ”

कुमारी के द्रवित हृदय में गहरी ठेस लगी । क्रोध से उसका मुख एक बार लाज हो उठा । तब उसने अत्यंत तिरस्कार-पूर्ण स्वर में कहा—“छिः करुणा ! माता-पिता के प्रति तुम्हारा कैसा गहिर्त व्यवहार है ! तुम्हें जज़ा नहीं आती ? ”

सण-भर में वह प्रफुल्लित हास्य जोप हो गया, चेहरा उतर गया, और उसने अपराधी की भाँति सिर झुका लिया ।

‘शर्म की बात है करुणा !’ कुमारी ने हृदय के आघेग को न सँभाळकर कहा—“पिता तुम पर जान देते हैं, माता तुम्हारी सुरत देखने को भटकती है, और तुम ? तुम उनकी सेवा-टहल-परिचर्या करना तो दाकिनार, उनका उपहास करती हो, उन्हें दुःख पहुँचाती हो ! तुम कितनी बदल गईं, मेरी करुणा ! ”

जब देखा, करुणा आज से गदी जा रही है, तो कुमारी ने अपने तिरस्कार के अंतिम अंश को स्नेह-पूर्ण बनाकर उसके शोभ को हल्का करने की चेष्टा की, और सचमुच उसका शोभ हल्का हो गया, और

कुमारी की छाती पर सिर रखकर उसने दोपी बालक की भाँति रुक-रुककर कहा—“मैं तो यों ही कहती थी.....मेरा यह मतलब नहीं था।”

कुमारी ने स्नेह-पूर्वक करुणा की पीठ थपथपाते हुए कहा—“ना, करुणा, यह अच्छा नहीं है। देखो, मा मूर्च्छित हो गई थीं।”

“मूर्च्छित ?”

“हाँ, उन्होंने तुम्हें पुकारा था। तुम वहाँ से गायब हो गई थीं। इस आघात से मा मूर्च्छित हो गई हैं।”

करुणा चुप खड़ी रही।

“जाओ, भीतर जाओ”, कुमारी ने कहा—“और मा के चरणों पर सिर रखकर सच्चे मन से क्षमा माँगो। जाओ !”

हम नहीं कह सकते, मन से या बे-मन से, पर करुणा आज्ञा-कारिणी छात्रा या आश्रिता की भाँति चुपचाप भीतर चली गई, और कुमारी के कथनानुसार अचेत मा के चरणों पर सिर रखकर मन-ही-मन क्षमा माँग आई।

बाहर खड़ी-खड़ी कुमारी ने सब देखा। पर उसका क्षमा माँगने और सिर झुकाने का ढंग देखकर उसे यह समझते देर न लगी कि उसके आज्ञा-पालन में ‘सच्चे मन’ का अभाव है।

अक्रसोस ! टूटे हुए, सूखे हुए संस्कार-तंतु किस प्रकार कटपट जोड़े जा सकते हैं ! कुमारी के मुँह से एक हल्की-सी ठंडी साँस निकल ही गई।

“माँग आई !”—करुणा ने त्याही की शीशी क्रमीज़ की जेब में डालकर कहा—“अब तो नाराज़ नहीं हो ?”

कुमारी ने गंभीर होकर कहा—“ठीक है !”

करुणा ने समझा—बात समाप्त हो गई।

पर नहीं, कुमारी के मन का असंतोष नष्ट न हो सका।

“आओ, जरा बाग़ीचे में टहलें ! माजी से कहकर देवदा खुशवाती हूँ—तैयार हो गया !”

“चलो !”—कुमारी अब कोई ऐसी बात नहीं कहना चाहती, जिससे करुणा दुखी हो ।

करुणा पास आई, और कमीज़ की जेब से स्याही की शीशी निकालकर आप-ही-आप बोली—“इसे यहीं रख दूँ !” फिर सहसा उसे जेब में डालकर कहने लगी—“चलो, छोटकर दफ़्तर में रख दूँगी ; यहाँ कोई नौकर का छोकरा तोच देगा ।”

दोनों सखियाँ बाग़ में टहलने लगीं । बातें भी हो रही थीं । कुमारी ने सूरज की तरफ़ देखकर कहा—“मुझे जल्दी ही लौटना होगा ।”

“वाह ! क्यों ? आज नहीं, कल जाना । इतने दिन बाद...”

कुमारी ने कड़ी बात न कहकर साधारण भाव से कहा—“मा बीमार जो है !”

“ओह !” मुजक़द़ करुणा ने कहा—“क्या तकलीफ़ है ?”

“कहा तो—ज्वर से पीड़ित हैं ; अपने वचन का पालन करने के अभिप्राय से ही उन्होंने मुझे भेज दिया है, अन्यथा...”

“अरे ! क्या बहुत तकलीफ़ है ?” करुणा ने साम्रह पूछा ।

आश्चर्य ! कैसी अद्भुत है ! अपनी मा से ऐसी विरक्ति और दूसरी पर इतना स्नेह ! कुमारी ने सोचा—‘कृत्रिमता तो नहीं !’ पर नहीं, वह भोजा चेहरा फ़पट की छाया से आच्छादित न था, उन हिरनी के बच्चे के-से जिज्ञासु नेत्रों में चूज़ की गुंजाइश नहीं थी !

कुमारी एक बार मुग्ध हो उठी ! कैसी सरलता है !

बोली—“ज्वर से शिथिल हो रही थीं.....”

करुणा ने कमीज़ की जेब से स्याही की शीशी निकाल ली थी, और बच्चों की तरह उसे इस हाथ से दस्त में और उससे इसमें उड़ान रही थी ।

...सहसा यह क्या हो गया ! शीशी का काँक खुल गया, और उसकी गाढ़ी, नीली स्याही थल-थल करके बिखर गई । वह क्रीमती बादामी साड़ी और क्रमीज़ स्याही से तर हो गई, कुछ स्याही कुमारी की उस पेम्क-जंगी घटिया धोती पर भी गिर पड़ी ।

उछलकर कल्याणी पीछे हटी, और आश्चर्य और खेद का प्रदर्शन करती हुई बोली—“छिः ! मैं कैसी मूर्ख हूँ । तुम्हारी धोती भी खराब कर दी ! चलो, बदल डालो ।” फिर सहसा जोर से हँसती हुई कहने लगी—“शायद तुम्हारी नज़र.....”—रुककर दाँत-तले जीभ दवाई, और बोली—“चलो, कपड़े बदलें, जल्दी चलो, उन लोगों के आने का समय हो रहा है ।”

अपनी वह मैली धोती खराब हो जाने का जितना दुःख कुमारी को हुआ, वही जानती थी । जोभ और खेद से उसकी आँखों में आँसू छलछला आए, हाय ! अभागिनी को दूसरे का कपड़ा पहनना पड़ेगा ।

पर इस संकटमय स्थिति में भी कल्याणी का अंतिम वाक्यांश सुनकर वह सहसा रोमांचित हो उठी । कितनी देर से वह प्रश्न उसके मन में चक्कर लगा रहा है ! कितनी देर से वह अधीरता-पूर्वक उनकी बाट तक रही है, कितनी देर से..... !

ओह ! उस विद्वान् से भेंट होगी !

दोनो चर्ची । अब उसे पर्याप्त साहस प्राप्त हो गया था । कल्याणी ने उसका थोड़ा अपराध किया है । अब उसके समक्ष कोई छोटी-मोटी दुर्बलता प्रकाशित करने से उसे हास्यास्पद बनने की आशंका नहीं है । बोली—“हाँ, तुम्हारे प्रोफ़ेसर साहब कब पधारेंगे ?”

कल्याणी ने कहा—“साहब ?—हाँ, आप तो शायद साहब ही..... आते ही होंगे । तीन बजे की बात है ।”

कुमारी बोली—“साहब सुनकर क्यों चौंकीं ? अरे, वह साहब, तुम मेम ।”

सहसा करुणा का मुँह उतर गया, बोली—“चलो, झटपट कपड़े बदल दालें।”

कुमारी ने रसिकता से कहा—“ओहो ! अभी से साहब का इतना डर है।”

ठच्छंखल, चंचल करुणा उदास होकर बोली—“जीजी, हँसी अच्छी नहीं लगती। चलकर पहले कपड़े बदल दालो। ये बातें तो फिर होती रहेंगी। हा ! हा ! बुरा मान गई ? अरे याबा, चाहे जितनी हँसी कर लेना, पहले कपड़े बदल दालो।”

परंतु विचारशीला कुमारी बुरा न मानकर सहसा गंभीर आश्चर्य में डूब गई थी। यह कैसा भाव ! यह उपेक्षा क्यों ? यह तो कृत्रिम नहीं, खिलने की जगह यह सुर्मा क्यों गई ? मुझे भ्रम तो नहीं हुआ ?

अब उस भ्रम को दूर करने के अभिप्राय से बोली—“नहीं, बुरा तो नहीं मानी, यह सोचती हूँ कि तुम्हारे साहब बड़े ही रोयदार, ज़बर्दस्त हैं, जो तुम-सी.....उनसे इस प्रकार कॉपती है।”

पर करुणा का भाव हास्य-पूर्ण न हुआ; न वह गंगा-जमनी हरकी मुसकान दिखाई दी, न गर्दन झुकाकर मीठी लज्जा का प्रदर्शन। बस, उदास होकर उसने इस प्रकार सिर झुका लिया, मानो अपने बदप्पन का दुरुपयोग करके कुमारी ने कोई अनुचित बात उससे कह दी है।

सॉल रोककर और पूरा खोलें खोलकर कुमारी ने सखी के इस अभूतपूर्व भाव पर लक्ष्य दिया, और फिर बिना कुछ बोले उसके साथ-साथ चले दी।

सखी को साथ लिए करुणा कपड़ा बदलने के कमरे में गई। कई लेंथी-लेंथी शीशे की आरमारियाँ सादाँ, जैकेट, क्रमीज़ इत्यादि कपड़ों से भरी हुई थीं। सखी का धैर्य देख आज पहलेपहल कुमारी

को अतीत काल की याद आ गई ! उसकी आत्मारियाँ भी इतनी ही बड़ी-बड़ी थीं, उसके भी इसी तरह बे-शुमार वस्त्र थे, उसने भी कभी क्रीमती-से-क्रीमती कपड़ों के लिये इतनी ही लापरवाही दिखाई थी ।

और आज ?

हाय ! आज—उस पेमक-लगी, पुरानी धोती के बिगड़ने से उसे एक बार कितना कष्ट हुआ है..... !

‘पेमक-लगी धोती ! मैत्री ! गंदी ! पुरानी ! ओह !’ कुमारी के मन में सहसा एक नवीन भाव की सृष्टि हुई । स्याही की शीशी, क रुणा की बहानेबाज़ी, जेब में रखना, सहसा कार्क का खुलना और उसी वक्त साड़ी बदलने के लिये कहना—इन सब कदियों को सिलसिले-वार रखने से—मेरे राम—यह क्या बन जाता है ? कौशल ! अद्भुत कौशल ! ओरू..... !

उसने सहसा चमककर क रुणा की तरफ़ देखा । संदेह नहीं, विश्वास हो गया । क्या देखा ? क रुणा दुःख, दया और स्नेह का आर्द्र भाव बनाए, कुमारी की उस मैत्री, पुरानी, घटिया धोती की तरफ़ देख रही थी ।

कुमारी ने यह देख लिया, और फिर बिजली की तरह घूमकर ज्यों-की-न्यों हो गई !

हाय क रुणा ! तेरी इस उच्छ्रंखलता के मध्य क्या कुमारी का इतना सम्मान, इतना स्नेह छुपा हुआ है ?

कुमारी की चेष्टा पर क रुणा ने भी लक्ष्य दिया, और एक बार उसका हृदय काँप उठा । क्या कौशल खुल गया ? अब कुमारी क्या कहती है ?

पर कुमारी ने कुछ नहीं कहा । और जब उसने कुछ नहीं कहा, तो यह क्यों पूछे ? संभव है, भ्रम हो, और पूछने-ताछने में भेद खुल जाय ।

बस, उसने, स्वभाव के विरुद्ध, आज पहली बार अपनी जिज्ञासा दबाकर गंभीरता का परिचय दिया।

यदि थोड़ा-बहुत संदेह बाकी रह गया था, तो करुणा की इस अस्वाभाविक गंभीरता ने वह भी दूर कर दिया, और सखी के अलौकिक स्नेह-सम्मान पर सुग्ध हो, कुछ क्षण के लिये कुमारी अचेत-प्राय हो गई।

‘.....पर, मैं इसका कपड़ा न पहनूँगी.....’

करुणा ने एक आश्चर्यमयी खोजी, और कहा—“तो वहन, पसंद करो !”

“मैं पसंद करूँ ? अरे, तुम पहनोगी, तुम्हीं पसंद करो ।”

“वाह ! पर अपने लिये.....”

“मैं ? न, मैं न बदलूँगी ।”

“क्यों ?” कलेजा जोर से धड़कने लगा।

“न, मेरी धोती ज्यादा खराब नहीं हुई है, ज़रा धोकर ठीक किए लेती हूँ ।”

“यह कैसे ? वाह ! सारी धोती तो मैली..... न, न, खराब हो गई है ।”

जख्दी में असल घात आखिर निकल ही गई !

करुणा ने देखा, काम बिगड़ रहा है। झट-झट नई धोतियों की यह-की-यह निकाल-निकालकर पटकने लगी, और कहने लगी—
“वाह ! यह कैसे हो सकता है ! जब धोतियाँ मौजूद हैं, तो क्यों खराब धोती पहनो ! वाह.....तो जख्दी से छाँटो—क्यों, यह संदली रंग तुम्हें पसंद है ?”

वाह ! कैसी कैसी लाड़ी है ! पाठकचाहे बुरा मानें, मैं तो उसकी कमजोरी को छिपाऊँगा नहीं, एक बार तो उसका जी जलच उठा ! परंतु कहने लगी—“ना करुणा, मैं धोती न बदलूँगी, तू बदन ढाक !”

“क्यों ?”

“देख तो—कहीं खराब भी हुई है; ज़रा-सा धब्बा ल गा है। ना, मैं नहीं बदलने की।”

“नहीं बदलने की ?”

“नहीं।”

“तो मैं भी नहीं बदलती।” कहकर करुणा क्रोध से उन नई, क्रीमती साड़ियों को ठठाकर इधर-उधर फेंकने लगी।

कुमारी ने उसका हाथ पकड़ा, और कहा—“एँ ! यह क्या पागलपन ?”

“तो तुम बदलती क्यों नहीं ?” कहती-कहती करुणा रो पड़ी। कुमारी ने सखी को छाती से लगा लिया, और प्यार से उसका गाल चूमकर कहा—“धन तेरे को, मैं तो हँसी करती थी, आप.....। घाह रे तेरा रोना ! पगली कहीं की !”

करुणा ने गुनगुनाकर कहा—“तो पहनो !”

“जा बाबा, दे।”

“कौन-सी दूँ ?”

कहकर उसने कुमारी की तरफ देखा, और उसे हँसते देख, बच्चों की तरह ठिनककर हँस पड़ी !

आखिर एक साड़ी पसंद हुई। अब करुणा बोली—“कमीज़ किस रंग की निकालूँ ? जल्दी बोल !”

साड़ी पहनते-पहनते कुमारी ने रसिकता से कहा—“अच्छा, एक बात बता ?”

सारी जल्दबाज़ी भूलकर करुणा ने सरलता से पूछा—“क्या ?”

“साहब बहादुर से इतना क्यों डरती है ?”

कुमारी ने देखा, करुणा फिर पहले की तरह ओ-इत हो गई, मुर्झा गई।

फिर भी उसने पूछा—“बता ! बता !”

करुणा रुआसी होकर बोली—“देख, मैं फिर रो पड़ूंगी ।”

“अच्छा तो रो !” कुमारी ने आधी पहनी हुई साड़ी उतारते हुए क्रोध का प्रदर्शन कर कहा—“मैं तेरी साड़ी-वाड़ी नहीं पहननेकी !”

“अरे बाबा, अरे !” करुणा ने धवराकर कहा—“अच्छा-अच्छा, बोल, क्या कहती है ?”

“पहले यह बता, तू साहब बहादुर का नाम सुनकर इस तरह बिदकती क्यों है ?”

“पहले-पीछे नहीं”, करुणा ने अनमनी होकर कहा—“एक प्रश्न पूछ लो, कोई-सा पूछो ।”

“अच्छा, यही बता ।”

“और कुछ नहीं बताऊँगी ।”

“अच्छा ।”

अब उसने हँसकर कहा—“अरे बाह ! मैं बिदकती कहाँ हूँ—यह तो यों ही.....”

“मूठ !” कुमारी ने डाँटकर कहा—“तो ले, साड़ी उतारती हूँ ।”

“फिर वही ! अच्छा, क्या कहती है ? बोल !”

“अब बार-बार प्रश्न करूँ ? यता ।”

करुणा ने सिर नीचा कर लिया, और सोच-साचकर बोली—

“तू ‘साहब-साहब’ मत कहाकर !”

“क्यों ?”

“मुझे चिढ़ छूटती है ।”

“क्यों ?”

“साहब कहाँ, ही इज्जत जस्ट जाइके एन इल्लिट्रेट वन छ ।—गँवार !”

अरे ! यह क्या ! आश्चर्य से मुँह खोलकर कुमारी ने पूछा—
“इल्लिट्रेट ? गँवार ? यह कैसे ?”

“मोटी दरी की-सी टोपी, खदर का लंबा-चौड़ा कुर्ता, घुटने तक की धोती, तीन आने की चप्पल”—करुणा ने सूखी हँसी हँसकर कहा—
“ले चल, अब तो एक की जगह कई प्रश्न हो चुके !.....हाँ, आज देखो—शायद साहब बहादुर.....।”

ओफ़ ! लड़की प्रैशन की भूखी है !

(८)

दोनों सखी बाहर आईं । सहसा दासी ने आकर कहा—“ठाकुर साहब आए हैं ।”

“ठाकुर साहब ?—या प्रोफ़ेसर साहब ?”—कुमारी ने सोचा—
“शायद दासी प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र को ठाकुर साहब कहती है ।”

करुणा ने पूछा—“कहाँ हैं ?”

“बाहर के कमरे में ।”

कुमारी का हाथ पकड़कर करुणा बाहर के कमरे की तरफ़ चली । एक चौड़ी मेज़ के इर्द-गिर्द करीने से पाँच कुर्सियाँ रक्खी हुई थीं । मेज़ पर छुरी, चम्मच, काँटे और थाली, तश्तरी इत्यादि रक्खी थीं, बीच तश्तरी में ताज़ा खुदा हुआ केवड़ा रक्खा था, जो सारे कमरे में मनोहर सुगंध फैला रहा था । कमरे में इधर-उधर बहुत-सी गद्देदार कुर्सियाँ और सोफ़े, कोच इत्यादि सामान रक्खा हुआ था ।

इस कमरे के द्वार पर पहुँचकर सहसा कुमारी की दृष्टि आगंतुक पर पड़ी । अब उसे कुछ शंका हुई । दो क्रम पीछे हटकर उसने करुणा से पूछा—“यह कौन सज्जन हैं ?”

“मेरे एक सहपाठी हैं । इसी वर्ष बी० ए० पास किया है । दो वर्ष से बेचारे फ़ेल हो रहे थे । इन्हें भी निमंत्रण दिया गया है ।”

कुमारी ने सरोप कहा—“तुमने मुझसे पहले क्यों नहीं कहा ?”

“क्या ?”

“कि किसी अपरिचित व्यक्ति को भी निमंत्रित किया गया है । मैं ऐसी बे-पर्दगी..... । कोई सुने, तो.....”

“कहती क्या हैं आप देवीजी ? कुछ होश भी है ? क्या मैंने आपसे यह नहीं कहा कि आज कोई और भी निमंत्रित किए गए हैं ?”

“तो”, कुमारी ने मुस्कराकर कहा—“वह ‘और कोई’ तो आपके साहब—न, इविलट्रेट—बहादुर थे न ?”

“तो महाशया, वे आपके लिये अपरिचित नहीं हैं क्या ? या उनसे घूँघट काढ़कर बातें करतीं ?”

वेशक, बात तो सच ही है ! इस समय तो सचमुच कुमारी को चकराना पड़ा । अगर लेखादि पढ़े हैं, तो इससे क्या हुआ, कोई व्यक्तिगत भेंट-परिचय तो नहीं है ! कुमारी से उत्तर देते न बना ।

अपनी विजय पर मुस्कराकर कहना ने कहा—“चलिए, मेरी पर्दे-नशील देवीजी, यह महाशय भी कोई गुंडे या बदमाश नहीं ; अच्छे सज्जन पुरुष हैं ! इनसे भेंट करके भी आप अवश्य प्रसन्न होंगी ।”

कुमारी ने और कोई उपाय न देखकर पूछा—“अच्छा, और कौन-कौन आवेगा ?”

“बस, तुम्हारे वही ‘और कोई’ आएँगे ।”

“बस ?”

“हाँ, बस ।”

तब कुमारी, अपने मरसक लज्जा और संकोच दूरकर, सखी के पीछे-पीछे उस कमरे में प्रविष्ट हुई ।

सामने गद्देदार कुर्सी पर एक हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ स्थूलकाय, साँवला

युवक बैठा कुछ पढ़ रहा था । हैट उसने उतारकर छोटी मेज़ पर रख दी थी । सिर के बाल उसके काले, चिकने, पतले और घुंघराले, भौंहें घनी और मोटी, आँखों की पुतलियों में सूक्ष्म-सा पीलापन, ऊपर का थोड़ा पतला, गदन शगुले की-सी—मुड़ी हुई—छाती निकली हुई और हाथ-पैर लंबे-लंबे थे । पोशाक उसकी अंगरेज़ी दंग की थी ।

कमरे में पहुँचकर करुणा ने परस्पर दोनों अपरिचित व्यक्तियों का परिचय कराया । नाम उनका था—ठाकुर रामशरण सिनहा बी० ए०, एक ज़मींदार के पुत्र हैं, स्वयं शहर में रहकर पढ़ते हैं, परिवार के लोग देशांत में हैं ।

रामशरण ने कुमारी से हाथ मिलाकर निस्संकोच भाव से कहा—“आपको देखकर खुशी हुआ !”

कुमारी के मुँह से शिष्टाचार का कोई शब्द नहीं निकला, उसने सकुचकर सिर झुका लिया ।

कलाई पर बँधा हुई घड़ी की तरफ़ देखकर रामशरण ने करुणा को लक्ष्य करके कहा—“कहिपू, प्रोफ़ेसर साहब अभी नहीं पधारे ?”

करुणा ने लापरवाही से सिर हिलाकर कहा—“ना !”

“किसी दार्शनिक तथ्य के विवेचन में लगे होंगे !” कहते-कहते रामशरण चे-ज़रूरत ‘ही-ही’ करके हँस पड़े ।

कुमारी को रामशरण का यह परिहास गंदा लगा । करुणा भी उसकी हँसी में पूर्ण सहयोग न देकर धीरे से मुस्करा पड़ी ।

बात जमी नहीं, यह देखकर रामशरण कुछ अप्रतिभ हुए । क्षण-भर बाद ही बोले—“और कहिपू, आपके पिताजी कहाँ हैं ?”

“आते होंगे । अभी तो घर में ही थे ।..... कितना बज गया है ?”

रामशरण अभी घड़ी देख चुका था, तो भी अब पुनः देखी,

और जल्दी से बोला—“इसमें तो तीन बजकर चौदह मिनट हुए हैं ।.....देखिए, इसके अनुसार मैं तो ठीक समय पर ही आ गया ।... ..ऐसा मालूम होता है, मेरी घड़ी कुछ ‘फ़ास्ट’ है । असल में ये घड़ियाँ कुछ महीने तक ‘फ़ास्ट’ चलती ही हैं, बिल्कुल नहीं ही तो है, आज ही खरीद डाली । एक मित्र के साथ घूमने चला गया । रास्ते में एक घड़ियों की दुकान पर यह चीज़ देखी, तो ज़ट्ट हो गया । ढाई सौ रुपया दाम तो कुछ ज़्यादा ज़ेचा, मगर चीज़ नज़र पर ख़द गई थी, छोड़ने को जी नचाहा ।..... शक्ल-सूरत तो अच्छी है, अब देखूँ, काम कैसा करती है !”—कहते-कहते वह पुनः हँसने लगा ।

कुमारी की विरक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी । करुणा ने अन्यमनस्क भाव से मुस्किरा दिया ।

अब रामशरण कुमारी की तरफ़ आकृष्ट हुआ । यों तो रह-रहकर वह बराबर कनखियों से उसकी ओर ताकता जाता था, पर बोला अभी—“कहिए, आपकी ‘कालिफ़िकेशंस’ ॐ क्या हैं ?”

“मेरी ?” कुमारी ने कुछ चिहुँककर कहा—“कुछ नहीं, मैंने तो केवल मैट्रिक पास किया है !”

सहसा करुणा ने कहा—“लेकिन ठाकुर साहब, योग्यता से आधुनिक ‘कालिफ़िकेशंस’ का कोई संबंध नहीं । आपकी आध्यात्मिक योग्यता बहुत बढ़ी-चढ़ी है । शायद आपने ‘.....’-पत्रिका में श्रीमती कु० महाशया के लेख पढ़े हों ! आप ही वह श्रीमती कुमारी हैं !”

“श्रीमती कु० ?—श्रीमती कु० ?”—रामशरण ने चौंककर कहा—“ओह यस, याद आ गया ! प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र के घर पर आज ही तो—ठीक है !—अच्छा !—आप ही श्रीमती कु० हैं ?—गीता के संबंध में अभी हाथ में आपका एक लेख प्रोफ़ेसर साहब ने मुझे

पढ़कर सुनाया था। मैं तो खैर मूर्ख आदमी हूँ, मगर खुद प्रोफेसर साहब भी मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा कर रहे थे।”

कुमारी का हृदय पेंगें ले-लेकर उछलने लगा, और न-जाने कैसे और क्यों—क्षण-भर में ही उसके मन में ठाकुर रामशरण के प्रति उत्पन्न हुई विरक्ति नष्ट होकर एक अद्भुत पवित्र स्नेह का प्रादुर्भाव हो गया। मुस्किराकर कहने लगी—“वाह! आप अपने को मूर्ख क्यों कहते हैं?”

“मूर्ख नहीं तो क्या हूँ?”—रामशरण ने उदासीन होकर कहा—“एक बार ए० ए० में फ़ेल हुआ, दो बार बी० ए० में। और अब की बार पास भी हुआ, तो थर्ड डिवीज़न में।”

“वाह! यह भी कोई मूर्खता का लक्षण है! ना ठाकुर साहब, आपको अपनी पहली असफलताओं पर इतना दुखी न होना चाहिए।”

“नहीं, दुखी तो नहीं।” ठाकुर साहब ने मुस्किराकर कहा—“आप-जैसी विदुषी के दर्शन करके भी दुखी रहना बड़े दुर्भाग्य की बात है।.....मैंने सुना है, आप कोई पुस्तक लिख रही हैं?”

“पुस्तक? आपको कैसे पता लगा?”

“प्रोफ़ेसर साहब कहते थे।”

“अरे! प्रोफ़ेसर साहब?.....”

“जी हाँ, आपका वह गीता-संबंधी लेख—क्या नाम उसका? शायद गीता की व्यापकता—पढ़कर वह आपका पता पाने को सधीर हो उठे। आपको शायद मालूम हो—उनके लेख भी उस पत्रिका में छपते हैं.....”

कुमारी ने सिर हिलाकर ‘हाँ’ कहा।

“हाँ, तो उन्होंने पत्र लिखकर संपादक से आपका परिचय और पता पूछा। आज सुबह ही तो उत्तर आया है। याद नहीं आता, कौन-सी गली लिखी थी, इसी शहर का पता दिया था। मैं तो

आपका नाम सुनते ही चौंका था, पर यह सोचकर रह गया कि एक नाम के दो व्यक्ति क्या नहीं हो सकते ! जब इन्होंने (करुणा ने) श्रीमती कु० कहा, तो याद आया, पत्रिका में आप अपना पूरा नाम नहीं छपवाती हैं.....।”

रामशरण यह सब कुछ कह रहा है, पर करुणा तो होश में नहीं है । उसका तो शरीर रोमांचित हो रहा है, कुर्सी से उछल पड़ने को मन होता है, और एकांत में जाकर झूब नाच-नाचकर हँसने-रोने की इच्छा होती है !

पर ये सब भाव उसने रोके, और धीरे से पूछ बैठी—“मगर वह पुस्तक लिखने की बात.....”

“हाँ, वही तो” रामशरण ने कहा—“शायद आपने संपादक को इस बात की सूचना दी होगी । उन्होंने ने अपने पत्र में आपके परिचय के साथ-साथ लिखा था । बल्कि प्रोफेसर साहब तो कहते थे, वह इस पते पर जाकर आपसे भेंट करेंगे.....”

ओफ़् ! कुमारी को कैसा बीभत्स हर्ष हुआ !

अब वह क्या बोले ?—जीभ तो उसकी खुलती ही नहीं !

पर यह करुणा के हृदय में आग-सी क्यों दहक उठी ? उसके नेत्रों में यह रोष कहाँ से आ गया ? उसके चेहरे का रक्त सुतकर कहाँ चला गया ? अस्थिरता और आवेग से उसका अंग-अंग क्यों फटकने लगा ?

आखिर रहान गया । कहने लगी—“क्यों कुम्भो ! अहा हा !—कैसा हर्ष हो रहा है !”

इस वाक्य में कितना व्यंग्य था, कितना उपहास था, कितना विद्रूप था, और कितना गहरा द्वेष था ! क्या आप उसकी कल्पना कर सकते हैं ? क्या आप उसे समझ सकते हैं ? क्या आप.....?

बला से, आप समझें या न समझें, पर कुमारी कैसे न समझे !

सहसा नश्वर लगाकर किसी ने उसके शरीर का तो मानो सारा रक्त खींच लिया ! या दोनो गालों पर किसी ने कस-कसकर दो तमाचे मार दिए । या पड़ाव की छोटी पर चढ़ाकर किसी ने उसे घृणा-पूर्वक धक्का दे दिया !

मेरे ईश्वर ! क्षण-भर में यह क्या-से-क्या हो गया !

भयानक लांछना, व्यथा और कष्ट से अधीर होकर कुमारी ने सिर झुका लिया—झुका क्या लिया, झुका गया ! पलक मारते महफ़िज जैसे शमशान बन गई । कुमारी अब किसी प्रकार मर जाय, गढ़ जाय, अदृश्य हो जाय !

इधर करुणा ने—उस चंचल, उच्छ्रिखल, आज्ञाकारिणी करुणा ने—देखा, चार बहुत गहरा हुआ, और बात भावुक सखी के अंतः-प्रदेश तक घुस गई । ओफ़् ! उसने क्या कर डाला ! उसके घर आई है, उसका दिया कपड़ा पहने हुए है, ओफ़् ! उस सुई की-सी सूक्ष्म खरोंच ने कितना गहरा घाव उसके हृदय में किया होगा !!

पर यात समझ गई ! महला करुणा ने कहा—“क्यों कुमारी, अपनी प्रशंसा सुनकर क्या तुम्हें दुःख हुआ ? ठाकुर साहब, ठाकुर साहब, आप इनके लेख को रद्दी और बाहियात बताइए, और इनकी प्रशंसा निंदा कीजिए । अब घर बुलाकर इन्हें दुखी करना तो मंज़ूर नहीं है न !”

असली तथ्य तो ठाकुर साहब की कलना के बाहर था, हाँ, परिस्थिति की गंभीरता को वह भी अवश्य समझ गए थे । जयदी-जयदी, एक के बाद एक, जैसे तरह-तरह के रंग अभी-अभी दोनो सखियों के मुख पर आए थे—एक बी० ए०-पाम वयस्क युवक के लिये उन पर कुछ भी लक्ष्य न देना, या उन्हें बिल्कुल निरर्थक और तथ्य-हीन समझना तो बहुत अस्वाभाविक है । पर स्त्री-हृदय को वह अभुक्त-मोगी, अनुभव-शून्य छात्र कैसे पड़े ?

जब करुणा ने बात हँसी में उड़ाई, तो ठाकुर रामशरण को उसमें योग देने में भी कोई आपत्ति न हुई, और कहने लगे—“बहुत अच्छा, अगर आप मेरी प्रशंसा से असंतुष्ट होती हैं, तो अब कान पकड़ता हूँ, कभी आपकी प्रशंसा न करूँगा।”

कहकर उसने सचमुच कान को हाथ लगाया।

“अरे रे ! यह क्या !” कुमारी ने कहा—“यह आप क्या करने लगे !!”

“तो सच बताइए, आप मेरी किसी बात से रुष्ट हुईं ?”

“ना,” कुमारी ने हँसकर कहा—“करुणा यही वैसी है।”

“वाह !” करुणा ने दोनों हाथों और मुख की चेष्टा में ‘वाह !’ का भाव खूब अच्छी तरह भरकर कहा—“मुझे ऐसी-वैसी क्यों बताती हो ! मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया ? वाह ! प्लासी रहों !!”

“नाट, जेट दि मैटर गो टु हेल्ड छ !” रामशरण ने कहा—“खरम कीजिए, सुनिए, एक बात है। कॉलेज खुलते ही मैं तो एम्० ए० में दाखिल हो रहा हूँ। कहिए, आपकी क्या इच्छा है ?”

लक्ष्य सरीहन करुणा की तरफ था, तो भी वह कुछ न बोलकर कुमारी की तरफ देखने लगी।

और, कुमारी ने ठीक अभिप्राय समझकर उसकी रक्षा कर ली—
“यह तो कहती थीं, आगे नहीं पढ़ेंगी। क्यों करुणा ?”

विपत्ति फिर करुणा पर आई। न वह बोलना चाहती है, न बात आगे बढ़ने देना चाहती है।

दोनों सखियों की आँखें चार हुईं।

सहसा ठाकुर साहय चिल्ला उठे—“ऐ लो, प्रोफेसर साहय भी आ पहुँचे। हल्लो, मिस्टर नरुजचंद्र... !”

उसकी मानसिक अवस्था का वर्णन कैसे करूँ ?—जैसे उसने दाँत पीसकर अपने शत्रु पर भरपूर वार कर दिया !—जैसे ज़रा-से अपराध का अत्यंत क्रूर और प्रचंड बदला उसने ले लिया !—जैसे उसने अपने हृदय की प्रज्वलित अग्नि का पूर्ण प्रतिकार कर डाला !

पर इस प्रतिकार की, इस क्रोध की, इस वार की आवश्यकता उसे क्यों पड़ी ?—क्या इस पर भी आप शौर करेंगे ?

यह कुमारी सहसा क्यों उसके बीच में आ पड़ी ?—इस पर सहसा सब लोग क्यों हतने स्नेहाद्रं हो जाते हैं ? मेरे घर आकर ही इसे हर किसी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेने का क्या अधिकार है ? और, मैंने ही अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारकर क्यों इसके सामने अपने आपको हत-प्रभ कर डाला है ?

नकुल बोले—“आपका लेख पढ़कर मैं मुग्ध हो गया ! आपमें इसी अवस्था में ऐसी आध्यात्मिक प्रतिभा है, यह सचमुच आश्चर्य और गर्व का विषय है।”

कुमारी को बोलना चाहिए । इस तरह लजाकर चुप रहना या, तो आई ही क्यों, और लजाने की बात ही क्या है ?

चेहरे पर लाल रंग था । कहने लगी—“मैं आपको धन्यवाद...”

रामशरण ने आँखों में रहस्य भरकर एक बार करुणा की ओर देखा, और तब मुस्किराकर कुमारी के प्रति बोला—“मगर यह तो सताइए, ‘आप’ इनसे मिलने को क्यों व्याकुल थीं ?”

वाह ! करुणा के मन का प्ररन हुआ ! अब कुमारी छूव छुकेगी—देखें, क्या जवाब देती है ?—ओह ! बड़ी भारी लेखिका है न !

कुमारी को छकाने, लजाने या जलाने की इच्छा करुणा के मन में उत्तरोत्तर तीव्र होती जा रही है !

पर कुमारी समझ चुकी है—वह ध्वरापंगी नहीं, साहस-पूर्वक इनका सामना करेगी । क्यों ध्वराय ? कोई परीक्षा नहीं हो रही है,

कोई कष्ट नहीं पड़ रहा है, कोई विपत्ति नहीं आ रही है ! इस झोकरी करुणा और इस पागल रामशरण के गंधेवन पर क्यों वह शर्म से गढ़े ? और, क्यों न थोड़ी बेहया बनकर उन्हें ला-जवाब कर दे ? क्यों न उनकी उपेक्षा करके उन्हें ही लजा दे ?

अखिलें उसने प्रोफ़ेसर साहब के गोल और तेज-पूर्ण मुख पर झमाई, और अस्फुट स्वर में कहा—“मैं भी बहुधा आपके..... लेखों का.....लेखों को पढ़ती रहती हूँ ।”

कहना वह यह चाहती थी—“आपके पांडित्य-पूर्ण लेखों का रसास्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त करती हूँ ।” पर चाहे जितनी दृढ़ हो चुकी थी, यह बात सहसा उसके मुँह से न निकल सकी ।

नकुलचंद्र बोले—“जी हाँ, मैं भी उसी पत्रिका में लिखा करता हूँ—मेरा और आपका विषय लगभग एक-सा ही है, पर वर्षों से अध्ययन और अन्वेषण में लगे रहकर मैंने जो कुछ समझा है, मेरे झयाज में, आपने उससे अधिक और ठीक समझा है । गीता की महत्ता को, ज्ञान पड़ता है, आपने खूब अच्छी तरह और खूब स्पष्ट देख लिया है । और, आगे चलकर न-मालूम.....”

कुमारी सोच रही थी, कह दे—“कई अंशों में आप ही मेरे गुरु हैं, आपके लेखों ने मेरे लिये पथ-प्रदर्शक का काम किया है ।” —इत्यादि ।

पर इस करुणा का बुरा हो ! बीच ही में गंभीर भाव से बोल पड़ती है—“आगे चलकर जो होगा, मैं जानती हूँ । आगे चलकर क्या होगा, और सारा अध्यात्म-रस बच्चे-कच्चों के पात्राने की बद्बू सूँघकर वह निकलेगा ।”

भोजन आ गया था, फल और नमकीन की तरतरियाँ रक्खी जा चुकी थीं । एक नौकर, एक दासी परस रहे थे, उन्होंने भी और उस कमरे में उपस्थित तीन आसन्नित व्यक्तियों ने भी करुणा के इस गंदे, अशिष्ट और अनुपयुक्त उपहास को सुना.....।

कुमारी की बात तो पीछे कहेंगे, नकुलचंद्र के सतेज मुख पर भी लाज और संकोच की सलवटें पड़ गईं, आँखें निष्प्रभ हो गईं, और गर्दन कुछ नीचे झुक गई। भयानक खेद और परित्याग उनकी प्रत्येक भाव-भंगी से प्रकट होने लगा।

यहाँ तक कि रामशरण भी लज्जित हास्य-पूर्ण नेत्रों से एक बार करुणा को ताककर चुप हो गया।

अब कुमारी की सुनिप—

एक बार उसकी इच्छा हुई, जोर से एक तमाचा करुणा के मुँह पर मारे, फिर क्षण-भर बाद ही इच्छा में परिवर्तन हुआ, और उसने क्रौर्य कुर्सी छोड़कर उठ जाने और उसी दम अपने घर चले जाने का विचार किया।

पर दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता और परिस्थिति उसके लाज चेहरे को और अधिक लाज कर देने के अतिरिक्त उपर्युक्त और कोई आज्ञा उसे न दे सकी, और कुमारी पथर की मूर्ति की तरह निश्चल, निर्वाक जमी बैठी रही।

आँखें उसकी छलछला आईं।

इस पल-भर की निस्तब्धता के कारण करुणा का मन धिक्कार और परित्याग की ज्वाला से दग्ध हो उठा, और अनुताप, खेद, वेदना के रंग से उसका सारा शरीर रँग उठा।

यह क्या-से-क्या हो गया ? मेरे ईश्वर ! यह करुणा का ब्रह्मास्त्र दुःगुनी, चौगुनी, सौगुनी, हजार-गुनी ज्वाला और वेग-सहित किस प्रकार उल्टा उसी पर आ पड़ा ? इस चार आदमियों के संघिस समाज में सबको दुःखी करके, सबको असंतुष्ट बनाकर, सबकी अप्रिय पात्री बनकर कैसे वह असहाया अपनी मान-रक्षा कर सकेगी और ऐसा भयानक अपमान, ऐसी तीव्र यंत्रणा, ऐसी कदवी लांछना, ऐसा बीभास आस, और ऐसा विजृम्भ विद्रूप सहकर कितने ज़रा उसका कलेजा फटे बिना रह सकेगा ?

सहसा रामशरण ने नश्वर लगाकर फोड़ा खोल देने की महती अनुकंपा दिखाई, या कहें, करुणा का महान् उपकार किया ।

बोला—“आपकी यह बात तो कुछ ठीक नहीं जैची ।”

बस !—फिर क्या था, बात समझल गई । करुणा मूट खोल उठी—“क्यों, जैची क्यों नहीं ?—आप ही बताइए, विवाह के बाद अभगिनी हिंदू-बाला को पढ़ने-लिखने या किसी गंभीर विषय का विवेचन करना कहाँ सूझता है, और कहाँ इतना अवकाश मिलता है ?”

ओह ! कितनी बड़ी बात थी, और कैसी आसानी से समझल गई ! नकुलचंद्र का संदिग्ध, स्तंभित हृदय ठो एकबारगी, पहले की तरह, निर्मल और स्वच्छ हो गया । कहने लगे—“कुछ हद तक यह बात सच हो सकती है । माना, विवाह के बाद किसी गंभीर विषय के अध्ययन और अन्वेषण के लिये समुचित समय नहीं मिल सकता, पर इस बात से कैसे इनकार किया जाय कि उद्योगी व्यक्ति भयानक-से-भयानक कठिनता में भी समय निकाल सकता है, शिक्षित परिवार और सु-संस्कृत पति-पत्नी तो सहज ही में एक दूसरे को समझकर, परस्पर उदार हो सकते हैं ?.....”

“जैसा कि अवश्य आपके ‘केस’ में होगा !”—रामशरण ने भद्रे हास्य का पेंचद लगाया ।

करुणा एक नई बात बताने का जोम न त्याग सकी । इसमें कितनी उसकी चपलता थी, कितनी दृढ़त्वता और कितनी ईर्ष्या, यह मैं नहीं कह सकता । कहने लगी—“अभी तो कुछ निश्चय ही नहीं हुआ है !”

हम इस बात को शुरू से नोट करते आ रहे हैं कि करुणा के प्रति नकुलचंद्र के भाव में सुझम-सी विरक्ति और उपेक्षा विद्यमान है, और करुणा की बातों पर वह अधिक ध्यान देना नहीं चाहते

हैं, न उसकी बात का जवाब देना ही उन्हें अभीष्ट है, बल्कि उससे नज़र चुराने की भी ज़रा-ज़रा चेष्टा वह करते हैं, पर उसकी यह बात सुनकर उनके भाव में सहसा एक अद्भुत परिवर्तन हुआ, और उनके मुँह से निकल पड़ा—“सच?”, और साथ ही करुणा के मुँह का भाव बदल गया।

(१०)

आखिर सब चीज़ें परसी जा चुकीं, तो रामशरण ने इधर-उधर देखा, और कहा—“तो आरंभ किया जाय?”

करुणा बोली—“अवश्य।” नकुलचंद्र ने कुछ अस्थिर स्वर में कहा—“बाबूजी.....वह शायद.....”

“हाँ, ‘बाबूजी’ को आने दिया जाय—!” आखिर कुमारी ने भी कह ही डाला।

“वह न आवेंगे।”—करुणा ने विरक्त होकर कहा—“डॉक्टर पर, नर्स पर, दासी पर, किसी पर उन्हें विश्वास नहीं है। औषधि पिता रहे होंगे—वह न आवेंगे।”

नकुलचंद्र कुछ न बोले, केवल अस्थिर दृष्टि से इधर-उधर ताकने लगे।

करुणा का भाव भी उनके प्रति कुछ उपेक्षित है— यह भी हमसे छुपाते न बनेगा। कम-से-कम वैसा संकोच-पूर्ण भी नहीं है, जैसा इस स्थिति में होता, न उसके मुख पर वैसा स्निग्ध हास्य ही दिखाई देता है। एक शुष्क लापवाही और एक कड़वी चिढ़न निरंतर उसके व्यवहार में दीख पड़ती है, जैसी व्याह होने के दो-तीन वर्ष बाद कभी-कभी दंपति में देखी जाती है, अथवा पति के व्यक्तित्व में श्रेष्ठ का अभाव पाने पर जैसा माघ समय-समय पर पत्नी के आचरण में पाया जाता है।

बाबूजी को बुलाने के लिये नकुलचंद्र नौकर से कहना चाहते थे,

बल्कि भोजन परसे जाने के बाद उठकर कहीं जाना असम्भ्यता न होती, तो वह स्वयं ही पुनः उनके पास जाते, पर करुणा की उपेक्षा को वह विद्वान् पुरुष किसी-न-किसी हद तक तो समझता है । ऐसी स्थिति में आप ही कहिए, उसके घर में बैठकर उसकी इच्छा के प्रतिकूल कैसे उसी के नौकर को वह आज्ञा देने का साहस करें ?

पर इस गोरख-धंधे की-सी परिस्थिति को ज़रा न समझकर भी रामशरण ने प्रोफ़ेसर साहब के मन की बात कह दी । बोला—“तो आप ज़रा नौकर को भेजकर एक बार उनसे पुछवा द्यो न मँगाती हैं ?”

नौकर गया, और पाँच मिनट बाद ही लौटकर बोला—“साहब, दवा तैयार कर रहे हैं ।”

करुणा ने चीखकर कहा—“अरे गधे ! यह तो हमें भी मालूम था, यह बता, वह आ रहे हैं या नहीं ?”

नौकर-चाकर छोटी मालकिन से थर-थर झाँपते हैं । नौकर ने चिहुँककर कहा—“ना ।.....वह नहीं आ रहे.....कहा है—नहीं आ सकते ।”

करुणा ने आप-ही-आप खड़बड़ाकर कहा—“पहले ही कहती थी ! बाबूजी इतने बड़े हुए, मगर ज़रा विवेक नहीं । जग जानता है—मा के दिन पूरे हो चुके हैं, धन्वंतरि भी उन्हें नहीं बचा सकते, चौबीस घंटे में अदृतालीस प्रकार की दवाएँ देकर उसे तंग कर रहे हैं, और आप व्यर्थ हास्यास्पद बन रहे हैं ।”

रामशरण ने कहा—“बात यह है,.....आपने वह मस्ल सुनी है कि ‘जब तक श्वास, तब तक आस’ । यह तो स्वाभाविक ही है ।”

यह न समझिए, रामशरण ने कुमारी के विरुद्ध बोलने का साहस किया ? यह तो उसने सहानुभूति दर्शाई है, बल्कि कहीं—चापलूसी की है !

कुछ बीच में आपसे कह दूँ—जिससे स्थिति आपकी समझ में आ जाय, और कहानी पढ़ने में आपको मज़ा मिले।

यह रामशरण सेकंड हयर तक नकुलचंद्र के साथ पढ़ा था। फ़ेल होने के कारण पिछड़ गया। इसके पिता—वह पूर्वोक्त देहाती ज़मींदार—करुणा के पिता के पुराने मित्र हैं। करुणा के पिता की देख-रेख में ही वह शहर में शिक्षा पा रहा है। करुणा के साथ उसका पुराना परिचय है। हम यह कह दें कि अगर प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र बीच में न आ पड़ते, तो करुणा अब तक शायद उसकी पत्नी बन गई होती।

पर इस प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र ने तो सहसा उसकी जगह हथिया ली ! पहलेपहल, दो साल हुए, नकुलचंद्र रामशरण के साथ यहाँ आए थे, और उसी के द्वारा उनका परिचय करुणा के पिता से हुआ था। रामकिशोर (करुणा के पिता) जहाँदीदा आदमी हैं। नकुल को देखा, बात की, तो रीझ गए। उधर रामशरण फ़ेल-पर-फ़ेल इधर नकुल दौड़ादौड़ बढ़े जाते थे। यहाँ तक कि एम्० ए०, बी० टी० जल्दी-जल्दी पास कर फ़ौरन् उसी कॉलेज में प्रोफ़ेसर हो गए।

पर कन्या का झुकाव उन्हें ढाँवाढोल-सा दीखा। नकुल से हँसती है, बोलती है, मिलती है, पर चिढ़ती भी है। वह स्निग्ध प्रेम और खिंचाव, जो देखते ही प्रेमी-प्रेमिकाओं में पैदा हो जाता है, करुणा में उन्हें न देख पड़ा।

और फिर शायद वह इसके बिना भी करुणा को नकुल से ब्याह देते, पर एक बड़ी बाधा थी। नकुल के पिता भयानक पुराने रोगी, कुसंस्कृत और अशिक्षित व्यक्ति थे। करुणा उस गंदे घर में उस अक्लबुझ, क्रोधी, रोगी, घृणित बुढ़े के साथ एक दिन भी कैसे रह सकेगी ? एक दिन बातों-बातों में उन्होंने नकुल का संतव्य जानना चाहा। नौकरी लग जाने, और विवाह हो जाने पर क्या वह पिता से अलग हो जायेंगे ? इस पर नकुल के नेत्रज्वाल हो गए, और वह यह कहकर उसी वक्त

चले गए थे—“ऐसी कल्पना आपके मन में आई, यह अफसोस की बात है !”

समझदार, बूढ़े रामकिशोर ने इस तिरस्कार को शर्बत की घूँट समझा, नकुल ने उनके हृदय में अधिक जगह बना ली। नकुल इस घटना के बाद कुछ दिन उनके घर न आए, तो वह एक दिन स्वयं उनके घर पहुँचकर उन्हें बुला लाए।

तब उन्होंने सोचा, नकुल के पिता पुराने रोगी हैं, कुछ दिन में समाप्त हो जायँगे। तब तक नकुल नौकर हो जायँगे। न भी होंगे, तोउनका धन.....।

अब उनके सामने केवल यही काम रह गया कि कन्या नकुल के गुण समझे, और उनके प्रति उसे अनुराग हो।

पर चपल कन्या डलनी गहराई में न जा पाती थी। उसे अध्यात्म-वाद से कोई शरज नहीं, उसे समाधि और योग की क्रियाओं में कोई अनुराग नहीं, गहरे पानी में पैठकर रत्न खोजने का फट उठाना वह नहीं चाहती। अँगरेज़ी पोशाक, लंबे घुँघराले बाल, हर समय हँसता हुआ चेहरा—उसके विचार और प्यार करने की तो बस, यही चीज़ें हो सकती हैं। उदासीन चेहरा, गूढ़ धार्मिक वार्तालाप, मोटा गँवारों का-सा जिवांस और अशिष्टियों का-सा मुँह—भला कैसे वह अनुराग-पूर्वक इन सब पर विचार करने को समय दे ? नकुल से वह हँस सकती है, बोल सकती है, उस पर श्रद्धा कर सकती है, उसका आदर कर सकती है, पर प्यार—भला प्यार कैसे करे ? दिल-लगी कैसे करे ?

पिता ने उसे काफ़ी आज्ञाद, ढीठ और कहे—बेहया बना दिया है। ब्याह के विषय में पिता कई बार स्पष्ट प्रश्न कर चुके हैं, और सच जानिए, अगर नकुल न होते, तो वह रामशरण का नाम पिता के आगे पेश कर चुकी होती !

जी हॉ, नकुल न होते, तो । यह नहीं कि नकुल की तरफ उसका दिल दौड़ता था, बल्कि कारण कुछ और ही थे ।

कल्या पिता का आदर करती है, पिता का सच्चा स्नेह रखती है, और उनका दिल भी तोड़ना नहीं चाहती । वह स्याही से मा की दवा की तुलना करने की बात जो पिछले किसी पृष्ठ पर लिखी जा चुकी है, वह तो आपने देख ही ली—कोरा बहाना था, और कमरे में बैठे हुए आमंत्रित व्यक्तियों के सामने जो उसने पिता के प्रति विरक्ति प्रकट की, वह भी केवल उसका हृदय उद्वेलित होने के कारण । हॉ तो, पिता की इच्छा समझकर एक मुद्दत से वह नकुल को प्यार करने की चेष्टा करती आती है । हॉ, पिता की इच्छा ! समझेगी क्यों नहीं ? बच्चा तो नहीं है ?

नकुल के प्रेम का अंकुर जमा या नहीं ? यह बात अभी रहने दें । पहले रामशरण का नाम पेश न करने का अन्य कारण आपको बता दें । वह था रामशरण का स्वभाव—कुछ चापलूस और कुछ ईर्ष्यालु । नकुल की बात उठते ही वह दवा देना चाहता है, नकुल की प्रशंसा सुनते ही वह भी हत हो जाता है, नकुल की मज़ाक उड़ाने में वह सदा आगे रहता है, और बात-बात पर कल्या की प्रशंसा, खुशामद, चापलूसी करते वह थकता नहीं है ।

अपनी प्रशंसा सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होता ? पर सब बातों की हद होती है न ? अगर उस प्रशंसा में कृत्रिमता का ज़रा-सा भी आभास मिल जाय, तो मन कैसा विषण्ण हो उठता है ? इसका अनुभव तो आपको भी होगा ही ?

बस, यह गुँजलद उलझनी ही आ रही है, और आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि रामशरण की इस आदत ने चंचल कल्या का ज़िही मन उससे विमुख कर दिया है ।

और इधर यह संघर्ष, उधर पिता की चेष्टा । कल्या अनेक

बार मन-ही-मन यह निश्चय कर चुकी है । “नकुल से ब्याह करूंगी ।”

पर उसके विचार बहुत क्षण-स्थायी होते हैं ; पारे की गोली की तरह कभी इधर कभी उधर—और जब कभी ऐसा परिवर्तन होता है, तो जो भयानक तूफ़ान उसके मन में उठता है, उसे केवल वही आपको बता सकती है ।

उधर रामकिशोर बेटो का यह बदलता हुआ भाव देख-देखकर मन-ही-मन प्रसन्न होते हैं । नकुल को जामाता बनाने की कल्पना करके उनके शरीर में खुशी से रोमांच हो उठता है । जिन कारणों से बेटो का मन नकुल पर कम जमता है, उन्हें भी वह समझ गए, और एक बार बहुत-से आँगरेज़ी कपड़े धनवाकर उन्होंने उपहार में नकुल को देने भी चाहे, पर उसने अस्वीकार किया, बल्कि ऐसा करते हुए वह भोला-भाला निर्मल हृदय युवक कुछ दुःखित भी हुआ ।

इधर रामशरण की सुनिए । रामकिशोर का भाव वह कुछ-कुछ समझता है, और मन में इस बात का निश्चय होने पर भी कि नकुल को वह हरा देगा, वह उस पुराने मित्र से द्वेष रखता है ।

क्यों, उसे अपनी जीत का निश्चय है ? जाने कब, किस मौके पर, करुणा ने एक बार उसे ब्याह करने का वचन दे दिया था । करुणा चाहे उस वचन को भूल गई हो, पर वह नहीं भूला है । और भूलने भी क्यों ? प्रकटतः करुणा के व्यवहार में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ा, और अपनी आँखों से तो उसने नकुल और करुणा को आज तक परस्पर अन्य-मनस्क ही पाया है, सब भला वह कैसे करुणा के सूक्ष्म कौशल की कल्पना करे ? और कैसे उसके प्रणयि होने के दावे में अंतर डाले ?

सारी स्थिति का वर्णन हमने किया । कुछ जटिलता तो इसमें जरूर आपको मिलेगी, मगर एक बार फिर-पड़िए, बात सच है, और क्यों-की-त्यों है, इसलिये अवश्य आपकी समझ में आ जायगी ।

बस, अब यह परिच्छेद समाप्त होता है। भोजन करते समय का वार्तालाप और कृष्णा के मानसिक भावों का गिराव-उठाव आपको बताकर आपकी नज़रों में उसका चरित्र गिराने को जी नहीं चाहता। कमज़ोरियों से खाड़ी तो बिरले ही होते हैं—इस उन कमज़ोरियों का अनावश्यक प्रदर्शन कर चित्र को नंगा क्यों बनावें, कमज़ोरियों के पर्दे में गुणों को ढाँककर अनुदारता क्यों दिखावें, और अपने औपन्यासिकता के अधिकार का दुरुपयोग क्यों करें ?

हम तो आपका ध्यान अंत में इसी बात पर आकृष्ट करेंगे कि चखती बार कृष्णा कुमारी के साथ गाड़ी में बैठकर उसके घर तक गई, और उसकी माँ को देखकर प्यार से सखी के गले लगकर आपस लौटी !

(११)

एक बड़बूदार गंदी और सकरी गली है। दिन का प्रकाश बहुत वे-हया बनकर जाने पाता है। शामने-सामने के मकानों के छुज्जे कहीं-कहीं तो इतने पास हो गए हैं, जैसे दो मरखने साँढ़ हैं, जो क्रोध में थाकर टक्कर लेने को तैयार हों। हे क्यों नहीं ?—ग्युनिसिपैलिटी की लाइनें भी हैं ही, मगर सात रुपए मासिक से जलाने-वाले का पेट कैसे भरे ? वह महाशय रुपए में चवली का तेल उसमें भरकर घंटे-भर की व्यवस्था कर जाते हैं। और ठोक ही करते हैं; रात में घंटे-दो घंटे ही तो लोग चखते-फिरते हैं, फिर कौन रात-भर गली में झाँकने आता है ?

इसी गली के छोटे मकान में पिता-सहित प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र रहते हैं।

उस मकान की कैफ़ियत सुनिए। नीचे की मंज़िल में रसोईघर के ऐन सामने ही पाख़ाना है। दहलीज़ पेसी है, जिसमें दो के अतिरिक्त मुश्किल से तीसरा आदमी जगह पा सके। फ़र्श के पर्यर जगह-

जगह से दूटे हुए और चौक में अनेकों छोटे-बड़े गड्ढे पड़े हुए। दाजान और कोठे के अँधेरे की तो पूछिए ही मत। दिन के अँधेरे से तो रात की तुलना कर आपको समझाया जा सकता है, मगर रात की तुलना किससे की जाय ? वस, ऐसा बीभत्स अंधकार होता है कि नरक की कल्पना माल मारे !

नकुल के पिता शंकरलाल का थोड़ा परिचय आप पहले पा चुके हैं, यहाँ विस्तृत रूप से पाएँगे।

घोर निर्धन हैं। संपत्ति, जायदाद, जो कुछ कहें, एक यह मकान बच गया है। वह भी दो-तीन हजार की मालियत ! विण्डा के बीड़े को जैसे विण्डा में रहना सुखकर लगता है, शायद ठीक उसी तरह शंकरलाल भी इस स्थान को स्वर्ग समझे यहाँ पड़े हैं।

जब से प्रोफ़ेसर हुए, नकुल ने कई बार दूसरे मकान में चलकर रहने का विचार किया, पर अक्लीमी, अशिक्षित बुढ़े ने सदा दाँत पीसकर इसका विरोध किया।

दमे का पुराना रोग शंकरलाल को है, और अक्लीम खाने का व्यसन भी। नकुल जब आठवीं क्लास में पढ़ते थे, तभी माता का देहांत हो गया। ऐसे कुलसंस्कृत, दुराचारी और अशिक्षित पिता का पुत्र कैसे उच्च शिक्षा प्राप्त कर सका ? इसकी संक्षिप्त कहानी आपको सुनाए देते हैं—

मा उनकी देहांत की बेटी थी, और खूब पढ़ी-लिखी थी। शायद देहांत की होने के अपराध में ही ऐसे अशिक्षित नागरिक के पक्के पढ़ी। अस्तु। आरंभ से ही उसने बेटे को अपनी देख-रेख में रक्खा। पति के विरोध की परवा न करके उसे स्कूल में दाखिल भी करा दिया, और जीते दम तक किसी-न-किसी प्रकार पढ़ाती भी रही। जब मरी, तो चौदह बरस के बेटे पर ऐसा घोर विश्वास किया कि एक हजार रुपया चुपचाप उसे सौंप गई, और दो आज़ाएँ दे गई—“सदा पिता की

सेवा करना, और इस रूप की बात गुप्त रखकर जितना पद सको, पढ़ना ।”

दाजक नकुल ने मा के दोनो उपदेश गाँठ में बाँध लिए, और आज तक अक्षरशः माता की आज्ञा का पाबन किया ।

देखनेवाले कहते हैं—जैसी मा थी, बेटा बिल्कुल वैसा-ही है ।

मा कैसी थी, यह बताना व्यर्थ है ; बेटा कैसा है, इसे देखकर ही आप अनुमान कर लीजिए ।

शंकरलाल शुरू से उसके अँगरेज़ी पढ़ने के खिलाफ़ थे । अँगरेज़ी पढ़ा-लिखा पुत्र न-जाने कब उन्हें ज़हर खिलाकर मार डाले, न-जाने कब क्रिस्तान हो जाय, न-जाने कब क्या कर बैठे ?

पर पिता के सारे विरोध, सारी कठोरता, सारी कड़वी और असह्य ताड़ना-जाँछना को सिर पर लादकर भी नकुल आगे पढ़ता रहा, और आज इस दशा में है ।

शंकरलाल-जैसे व्यक्ति संसार में बिरले ही होते हैं । ऐसा भयानक कि पिता कहते लज्जा लगे । जब पत्नी मरी, तो बेटे से कहा—“अँगरेज़ी का लोभ छोड़ो, और मुनीमी सीखो, जिससे ज़रूरी दो पैसे पैदा कर सको ।”

नकुल ने सिर झुकाकर पिता की बात सुन ली, और स्कूल जाना बंद न किया ।

महीनों खूब जंग छिड़ी । शंकरलाल स्कूल में जाकर बेटे का नाम कटवा आए । जब नकुल ने सारा माजरा हेडमास्टर से कहा, तो उन्होंने फिर उसे दाखिल कर लिया, तब शंकरलाल रोज़ सुबह-शाम बेटे को क्रसाई की तरह मारने लगे । कुछ तो सदा का स्वभाव क्रूर और कुछ पत्नी की मृत्यु । सच फहें, तो वह नर-पशु बन गए थे ।

नकुल ने सब कुछ सहा, पर स्कूल जाना न छोड़ा ।

तब क्रसाई शंकरलाल ने एक दिन चिमटों, लकड़ियों, घूँसे और

जातों से मार-मारकर बेटे को अवमरार कर दिया, और दो दिन तक भूखा-प्यासा एक कोठरी में धंद रखवा ।

पड़ोसियों ने आकर बेटे को बाहर निकलवाया । पर अब की बार नकुल घर से ही गायब हो गया । हेडमास्टर ने सारा क्लिप्सा सुना, तो स्कूल के बोर्डिंग हाउस में उसे दाखिल कर लिया ।

चाहे कसाई हो या नर-पशु, है तो पिता । शंकरलाल आखिर पिघल पड़े, और बोर्डिंग-हाउस पहुँचकर रोते-रोते उन्होंने बेटे को छाती से लगा लिया । यह झूठ नहीं, बिल्कुल सच है !!

कुछ दिन तक शंकरलाल शांत रहे । नकुल बराबर पढ़ने जाता रहा, पर स्वभाव कैसे छूट सकता है ? थोड़े ही दिन बाद उनका अत्याचार फिर बढ़ने लगा ।

और सब तरह नकुल संग किया जाता, मगर पढ़ने में अब वैसी अड़चन न रही । बस, सहनशील नकुल के लिये इतना ही काफी था ।

शंकरलाल की प्रकृति ऐसी क्यों थी ? और एक भयानक दुष्ट का पुत्र कैसे इतना विद्वान्, सदाचारी और सहनशील हो सका ? इन प्रश्नों के उत्तर में कोई वैज्ञानिक सत्य आपको नहीं बता सकते । हम तो माता के प्रारंभिक उच्च संस्कार और पूर्व जन्म के शुभ कर्मों को ही इसका कारण मानते हैं । शंकरलाल की प्रकृति बहुत बीभत्स थी । बच्चे नकुल पर उनका अत्याचार तो खैर कुछ संतव्य भी था, मगर अब—हाँजी, एम्. ए. पास कर लेंगे, और प्रोफेसरी कर लेने, और अफीम और भोजन के लिये पैसा देने पर भी बेटे पर उनकी वैसी ही वाहियात ज़्यादतियाँ होती हैं । कुछ ऐसा भाव उनके मन पर जम गया है कि बेटे पर यह अत्याचार, यह ज़्यादती करने का उन्हें जन्म-सिद्ध अधिकार है । अब इसे एक भयानक उन्माद के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? नकुलचंद्र अब तक चुपचाप यह अत्याचार, अपमान और लांछना सहते, और पिता पर अदा

रखते हैं। नकुल के इस भाव की जोग हँसी उड़ाते हैं, पर हम न उड़ाएँगे—इसलिये नहीं कि हम आदर्शवाद का पृष्ठ-पोषण करना चाहते हैं, बल्कि इसलिये कि नकुल के संबंध में कोई निर्णय करने या मंतव्य देने में अपने को भी अयोग्य पाते हैं, और किसी कार्य का औचित्य, अनौचित्य स्थिर करने में अपने से अधिक उन्हें योग्य देखते हैं। और एक बात यह है कि हम अगर सर्वज्ञ बना भी दिए गए, तो भी यह तो आप मानेंगे ही कि भुक्त-भोगी अपनी स्थिति को हमसे अधिक समझता होगा।

घर के फर्श में गहरे-गहरे गड्ढे पड़े हैं—आज सारा फर्श तुड़वाकर नए सिरों से बनवाने के लिये नकुल कुछ राज-मजदूरों को लेकर आए हैं।

शंकरलाल खाँसते-खाँसते दाँत पीसकर बोले—“आज यह किन यमदूतों को साथ लाया है?”

नकुल ने नेत्र झुकाकर उत्तर दिया—“मिस्तरी-मजदूर जोग हैं.....।”

शंकरलाल ने उसी विकृत स्वर में कहा—“क्यों लाया है? क्या मेरी ब्रह्म खुदवाणी है?”

नकुल बोले—“फर्श में जा-बजा गड्ढे पड़ गए हैं। मैं इसे तुड़वाकर नए सिरों से बनवाना चाहता हूँ।”

शंकरलाल भयानक रूप से चीत्कारकर उठे—“रे कुलांगार! क्या यही करने के लिये तूने अँगरेज़ी पढ़ी है !!”

नकुल ने धीरे-धीरे शान्त स्वर में कहा—“देखिए न, इसमें हानि क्या है? फर्श पुराना और खराब हो गया है, इसे तुड़वाकर.....।”

“हाय ! तुड़वाकर !”—कहकर शंकरलाल ने जोर से एक मुक्का अपनी छाती में मारा, और दीवार से सिर टकराते हुए कहा—“हाय ! इसीलिये तूने अँगरेज़ी पढ़ी थी ?”

“लेकिन बताइए तो” राज-मिस्त्रियों को बिदा कर नकुल पिता से बोले—“इसमें घुराई क्या थी ?”

शंकरलाल ने रौद्र भाव से पुत्र को घूरते हुए कहा—“अरे ! तू मेरे सामने, मेरे जीते-जी पूर्वजों के स्थान को नष्ट-भ्रष्ट करके, अँगरेजी फ्रेशन उसमें घुसेड़ना चाहता है ! और फिर पूछता है क्या हज्ज हुआ ? जा, तू घर के बाहर क्रिस्तान बनकर फिर मेरी आँखों आगे, यहाँ पर कुछ नहीं कर पावेगा.....।”

इत्यादि बहुत-सा अनर्गल प्रलाप बुढ़ा करता रहा ।

सहसा किसी ने गली में आवाज़ दी—“नकुलचंद्र !”

सुनते ही बुढ़ा शंकरलाल अपनी चारपाई पर एक फ़ुट उछल पड़ा, और दाँत किटकिटाते हुए चीखकर बोला—“हाँ-रे-हाँ, यह तो मुझे आज ही मालूम हुआ है ! यह पापिष्ठ रामकिशोर यहाँ क्यों आता है ? क्यों, तू उसकी अँगरेजी पढ़ी, मेम साहब बेटी से ब्याह करेगा ? ठीक है न ? समझा होगा, मुझे पता ही न लगेगा ! हूँ ! अब उस बंदमाश रायबहादुर से पूछता हूँ—क्यों तू अपनी क्रिस्तान बेटी को मेरे बेटे के पत्ने बाँधकर उसे धर्म-भ्रष्ट करना चाहता है, और क्यों मेरे लाल को मुझसे छीनना चाहता है ?.....आज खून होगा—एकाध खून होगा !”

कहते-कहते, क्रोध से जलता हुआ बुढ़ा अपनी लाठी की खोज में धर-धर साकने लगा ।

जब लाठी न मिली, और खड़े होने में बुढ़ा अशक्त हुआ, तो वहाँ बैठे-बैठे उसने जोर-शोर से चीखना शुरू कर दिया—“अरे नीच, पापी रामकिशोर, ईश्वर करे, तेरा नाश हो जाय ! तू ज़रा मेरे सामने तो आ ! पापिष्ठ ! तू अपनी उस व्यभिचारिणी छोकरी को मेरे बेटे के गले बाँधकर क्यों उसे धर्म-भ्रष्ट करना चाहता है !” इत्यादि ।

नकुल एक बार कॉप उठे । जोम और संन्या के कारण उन्होंने

“हूँ !...अपने इच्छानुसार कैसे ?”

“अर्थात् यदि तुम्हे पत्नी के जिये अपने से अधिक खर्च करने को विवश न होना पड़े ।”

“ठीक !” रामकिशोर ने हठात् नकुल से आँखें मिलाकर कहा—
“अब मैं तुम्हें एक सलाह देना चाहता हूँ ।”

“शौर वह यह ।” जब नकुल ने सलाह सुनने की इच्छा प्रकट की, तो वह बोले—“तुम अपना आधा वेतन पिता को देकर पृथक् रहने का प्रबंध करो !”

नकुल एक बार आश्चर्यित हुए, फिर सहसा तलमला उठे । पहले चेहरा जाल हो गया..... ।

पर वह पहला लज्जा का भाव अभी विकीन न हुआ था । कैसे रामकिशोर पर क्रोध करें ? कैसे उन्हें कोई कड़ी बात कहें ? बस, इस दुविधा में पड़कर उनका क्रोध-भाव खण-मात्र में शांत हो गया, और आँखों में आँसू भरकर वह केवल यह कह सके—“भाह ! यह आप क्या कहते हैं ?”

कहकर उन्होंने माथा मेज़ पर टेक दिया । मानो सूरत छिपा लेना चाहते हैं !

रामकिशोर एक बार स्तब्ध हो गए । नकुल की पितृ-भक्ति का प्रमाण दो-एक बार पहले भी वह पा चुके ज़रूर थे, तो भी अपनी बात के ऐसे प्रभाव की उन्होंने कल्पना न की थी ।

कुर्सी उन्होंने अपनी आगे सरकाई, और बड़े प्यार के साथ उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—“नकुल ! बेटा नकुल !”

‘नकुल’, ‘प्रिय’, ‘प्यारे’ इत्यादि संबोधन अनेक बार उनके मुँह से निकल चुके थे, पर बेटा नकुल ! यह पहले ही पहल..... ।

नकुल ने धीरे-धीरे सिर ऊपर उठाया, और विपाद-पूर्ण नेत्रों से साफ़ते हुए कहा—“हाँ, पिताजी !”

“नकुल ! मैं तुम्हें पुत्र समझकर प्यार करता हूँ ।”

नकुल ने बिना पलक भ्रपकाए कहा—“मैं पिता की तरह आपका आदर करता हूँ ।”

रामकिशोर ने लंबी साँस ली, और कुर्सी पर सीधे बैठकर बोले—
“आज कई वर्ष बीत गए”—कहकर वह चया-भर के लिये रके । “आज कई वर्ष बीत गए”—उन्होंने कहा—“और मैं साफ़-साफ़ अपने मन की बात तुमसे न कह सका ।.....तुम बच्चे नहीं हो । क्या कल्पना कर सकते हो—क्या न कह सका, और अब क्या कहना चाहता हूँ ?”

नकुल बड़े संकट में पड़े । ऐसे संकट में, जिसका अनुभव उन्होंने जीवन में पहले-पहल किया है । कल्पना तो कर सकते हैं—वर्षों नहीं कर सकते, और इस समय तो वह कल्पना सत्य का रूप धारण करती जा रही है । पर उसे कहें कैसे ? वह बात उनके मुँह से निकले कैसे ?

.... चुप बैठे रहे; बल्कि लजाकर सिर झुका लिया ।

रामकिशोर बोले—“मैं समझता हूँ बेदा, सब समझता हूँ । पर ओह ! किस मुँह से तुम्हारी तारीफ़ करूँ कि आज तक तुमने अपना भाव व्यक्त न किया !”

चया-भर ठहरकर वह फिर बोले—“वेशक, मैं अँगरेज़ी पढ़ा-लिखा हूँ । एक मुद्दत तक वकालत भी की है ! अँगरेज़ी फ़ैशन से रहता हूँ । पर तुम भी इस बात को अवश्य समझते होगे कि मैं अपने व्यक्तित्व में विशुद्ध भारतीयता छिपाए हुए हूँ ।”

“बस, इसलिये”—जब नकुल ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया, तो वह बोले—“मैं तो तुमसे एक अशिष्टित भारतीय की तरह केवल यही पूछूँगा कि क्या मेरी करुणा तुम्हारी चरया-सेवा करने के योग्य नहीं है ?”

नकुल ठीक इसी बात की कल्पना करते थे, पर सुनकर न-जाने

क्यों उनका कलेजा जोर-जोर से धड़-धड़ करने लगा, और उस निर्विकार, साधु-चित्त युवक के सारे शरीर में सहसा रोमांच होकर चेहरे पर मिनट-मिनट में नया रंग आने-जाने लगा ।

“वेदा नकुल !” रामकिशोर ने द्रवित कंठ से कहा—“एक मुहूर्त से, जब से तुम्हें देखा है, मैं अपनी इस लालसा को हृदय में छिपाए हुए हूँ । आखिर आज समय देखकर खुल ही पड़ा । शायद बीच-बीच में मेरी बातों से तुम्हें इसका आभास भी मिला हो । क्यों ? ... अच्छा, मेरी पहली बात का जवाब दो !”

नकुल तब भी कुछ न बोख सके । जीवन में अपनी किस्म का यह पहला प्रश्न उनसे हुआ है । कैसे सहसा उसका उत्तर दें ?

रामकिशोर ने कहा—“बोलो, नकुल, बोलो । मैं तुमसे इतने संकोच की आशा नहीं करता ।”

हठात् नकुल ने फड़ा जी करके कह डाला—“वह स्वीकार न करेंगी ?”

“न, न, क्यों नहीं ? यह कल्पना तुमने कैसे की ?” रामकिशोर ने आगे झुककर जवदी से पूछा ।

नकुल चुप रहकर अपनी बात कहने के लिये शब्द ढूँढ़ने लगे । रामकिशोर अधीरता-पूर्वक बोले—“हाँ बताओ, यह कल्पना कैसे तुमने की ?”

आँखें नीची किए-किए हो नकुल ने कहना शुरू किया—“बहुत-सी बातें । मैं क्रैशन से नहीं रहता, ज्यादा हँसने-ठहकने का मेरा स्वभाव नहीं..... और सबसे बड़ी बात यह कि मेरे गंदे घर में, मेरे पिता की सेवा करना उन्हें गँवारा नहीं हो सकता ।”

रामकिशोर इसका उत्तर सोच चुके हैं । “देखो भाई”—उन्होंने कहा—“सबसे पहले तो यह बताओ—वरुणा में बचपन के अनिवार्य अहङ्गपन के अतिरिक्त तो तुम्हें कोई दोष दिखाई नहीं देता ?”

नकुल ने धीरे से सिर हिला दिया । अर्थात् नहीं ।

“—जो मेरा प्रयात्न है, तुम्हारा सख्तंग पाकर कुछ ही दिन में दूर हो जायगा । क्यों ?”

नकुल फिर लजा-से गए । उनका सख्तंग !—कहने लगे—“खैर, ओं ओं हो ।”

“अच्छा, अब तुम्हारे व्यक्तित्व के संबंध में कह दूँ । कसणा तुम पर श्रद्धा करती है, तुम्हारा मान करती है, और मन-ही-मन तुम पर प्रेम भी करती है । पर उसकी वही स्वाभाविक उच्छृंखलता तुम्हें इतना रूखा और सादा देखकर तुम्हारे प्रति उसे चिढ़ा भी देती है । समझे ?—तुम्हें याद होगा, कुछ समय हुआ, मैंने इशारे-इशारे में तुम्हें अंगरेजी पोशाक पहनने की प्रेरणा की थी.....।”

नकुल को वह कपड़े देने की यात याद आ गई ।

“मगर जब तुम्हारी अनिच्छा देखी, तो अधिक आग्रह न किया । मैं स्वयं भी समझता हूँ कि तुम्हारा व्यक्तित्व जिस साँचे में ढला है, उस पर लक्-दक् फ्रैशन की गुंजाइश नहीं है ।”

“मैं यह भी जानता हूँ कि सारा बाह्य आकर्षण केवल कुछ महीने तक मनुष्य को संतुष्ट करता है । घस, यही बात मैंने धीरे-धीरे कसणा को समझाई । असल में वह समझी है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता, पर भाव उसने ऐसा प्रकट किया है कि समझ गई । मगर संसार का ज्ञान उससे बहुत अधिक मुझे है, मैं उसका भविष्य पढ़ सकता हूँ । इसलिये अगर मेरी इच्छा समझकर ही वह अपनी आत्मा पर कुछ बजावट कर रही है, तो मुझे इसकी कुछ चिंता नहीं है । बल्कि, इस विषय में, यदि मुझे अपने अधिकार का कुछ अनुचित उपयोग भी करना पड़े, तो मैं निश्चिंत होकर करूँगा । क्योंकि भविष्य में उसे मेरे काम पर पड़ताना नहीं पड़ेगा, यह मेरा विश्वास है !”

नकुल रामकिशोर का एक-एक अक्षर ध्यान-पूर्वक सुन रहे हैं ।

“तो बस, मतलब यह कि उसकी सम्मति मैंने प्राप्त कर ली है, और तुम मेरी इस बात में ज़रा संदेह न करो कि अब यदि वह पूर्ण प्रसन्न न होगी, तो ब्याह के एक वर्ष बाद अवश्य संसार के सर्वोच्च सुख का लाभ करेगी।”

“ज़ैर, अब बात सिर्फ़ एक ही रह जाती है.....।”

रामकिशोर की बात सुनते-सुनते नकुल भविष्य की कल्पना करने लगे थे। अनेक बार इस कल्पना को वह, दुर्बलता समझकर, बल-पूर्वक मन से निकाल चुके थे, पर अब क्यों निकालें ?—अब तो करुणा के गुण, दोष, सौंदर्य, चांचल्य—सभी का विवेचन अनुराग-पूर्वक करने का उन्हें अधिकार है।

इठाव रामकिशोर की उक्त बात सुनकर उनकी सुख-कल्पना में बाधा पड़ी।

“अब बात सिर्फ़ एक ही रह जाती है”, उन्होंने कहा—“यह है तुम्हारे पिता की कर्कशता और मकान की गंदगी की समस्या। पिता को पृथक् तुम करना नहीं चाहते ! और बेटा, मुँह से मैं तुम्हें चाहे जैसी सच्चाई देता हूँ, मेरा हृदय खोजकर देखो, तुम्हारे इस भाव के कारण मेरे मन में तुम्हारे लिये कितनी श्रद्धा है ! आज यह भी मुझे तुमसे कहना ही पड़ा। ज़ैर, यह वेशक सच है कि करुणा तुम्हारे पिता की सेवा नहीं कर सकती, तुम्हारे उस घर में नहीं रह सकती।... और भाई, मैं समझता हूँ कि अगर मैं यह कहूँ कि कोई भी नहीं कर सकता—तुम अभ्यस्त हो, बात तुम्हारी छोड़ दे—तो तुम्हें इस पर अविश्वास नहीं करना चाहिए।”

नकुल तो अविश्वास करते हैं। क्यों अविश्वास करते हैं ?—ना साहब, यह मैं आपको नहीं बताऊँगा...। पर हाँ, यह बताने में क्या हज़ं है कि अगर कुमारी से न मिले होते, तो शायद अविदग्ध न करते। जी हाँ, कुमारी से जो उस दिन करुणा के घर पर अपने संबंधित

तर्जाप में ही.....न, न, और कुछ नहीं बताऊँगा—देखिए—
नि आपको कुछ बताया नहीं है !

मगर नकुल अपने अविश्वास की बात रामकिशोर से कह न सके ।
“देखो”, रामकिशोर ने कहा—“मैं एक स्पष्ट बात तुमसे कहा
चाहता हूँ । मैं जानता हूँ, तुम्हारे पिता जीते-जी अपने घर से अलग
रहना नहीं चाहते । मैंने एक उपाय उसके लिये सोचा है । अर्थात्
किसी दूसरे आदमी के द्वारा तुम्हारे उस मकान को दुगने-चौगुने दाम
देकर खरीद लूँ । तुम्हारे पिता तब अवश्य तैयार हो जायेंगे । तुमसे
सलाह माँगें, तो तुम अपनी सम्मति दे देना । तब एक बहुत बढ़िया
मकान में तुम लोगों के रहने का प्रबंध कर दूँगा । मेरे इसने मकान
शहर में पड़े हैं, जिसे तुम पसंद करोगे, खुलवा दूँगा । बस, वहाँ दो-
तीन नौकर अपने पिता की सेवा में नियुक्त कर देना । इस प्रकार...।”

“यह कौशल !”—झूब जोर से चिल्लाकर नकुल बोल उठे—“यह
कौशल !—यह कौशल !”

बस, तीन बार ‘यह कौशल’—‘यह कौशल’ के अतिरिक्त वह कुछ
न कह सके ।

रामकिशोर ने देखा, उनका भाव धीरे-धीरे बदल रहा है । बस,
यही उन्हें अभीष्ट न था । उन्होंने क्या किया ? आप इसकी कल्पना
नहीं कर सकेंगे ?

..... उन्होंने हठात् सिर से टोपी उतारकर नकुल के पैरों में पटक
दी, और गिड़गिड़ाकर कहा—“बेटा ! तुम मेरे-पुत्र हो.....।”

बुद्ध का गला रुँध गया, और आँखों में से आँसू बहने लगे ।

निर्मल, निष्कपट, निर्विकार नकुल के मन में जो घोर धिक्कार का
भाव उदित हुआ था, बुद्ध के इस अभूतपूर्व आचरण से दण-मात्र में
वह दूर हो गया, और टोपी हाथ में लेकर उन्होंने कहा—“अरे ! यह
आप क्या करते हैं ?”

“बस बेटा ! इस टोपी की जाज रखकर मेरी बात मान लो । देखो; यह बीस लाख की संपत्ति, यह बड़े दुखों से पायी कन्या, यह आदर-पूर्ण उत्तराधिकार मैं कुपात्र को सौंपना नहीं चाहता । मेरे अजीज, मेरी इस एकमात्र जाजसा को अपूर्ण न रखो !”

मगर बात आगे बढ़ न सकी । सहसा क्या हुआ ?—कहना कमरे में घुस आई ।

दोनों ने उस तरफ देखा । उसके मुख पर कोई भाव नहीं था । इन दोनों के वार्ताबाप की ज़रा-सी छाप उसके मुख पर नहीं थी । उसने साधारण भाव से नकुज को नमस्कार किया ।

हाँ, ज़रा-सी सुस्किराइट, ज़रा-सी लज्जा, आज पहले पहल उसकी आँखों में दिखाई दी !

रामकिशोर खड़े हो गए । “बस मैं चला, तुम सोच लो !” कहकर वह कमरे से बाहर हो गए ।

जाने, कहना और नकुज की इस नई भेंट से घटना कहाँ-की-कहाँ जा पड़ेगी, और क्या होता, मगर वार्ताबाप आरंभ भी न हुआ था कि उसी समय रामशरण हँसता हुआ कमरे में घुस आया और बोला—“ओह ! आप यहाँ बैठे हैं, मैं आपके घर पिताजी के पास होकर आया हूँ !”

पिताजी के पास ! पिताजी के पास !!

(१३)

नकुज के गुह्य भावों को समझने में हमें अतुल परिश्रम करना पड़ेगा, अतएव अब हम वैसा प्रयत्न न करके उनकी बाह्य चेष्टाओं पर ही दृष्टिपात करेंगे । रामकिशोर की बातों पर विचार करना है । वह इस समय नहीं जा सकेंगे । फिर कहाँ जायें ?

चण-भर सोचकर नकुज ने कुमारी के घर जाना स्थिर किया । उस दिन उससे वादा किया था, कभी आपके घर आऊँगा । वह वादा अभी तक पूरा नहीं हुआ । चलें, आज वहीं चलें !

मेरे ईश्वर ! यह कैसा विचार नकुल के मन में आ गया ! अब जब कल्या के पक्ष में भयानक संघर्ष उन्हें करना है, रामकिशोर की बात मानने को तैयार होना है, तब वह कुमारी के पास जाने का विचार क्यों कर रहे हैं ?

पर हम उन्हें समझाएँ कैसे ?

कुमारी आज घर में अकेली है। मा गई है कल्या के घर। कल्या की मा की अवस्था दिनोंदिन खराब होती जा रही है। बचपन की सखी से कैसे न एक बार भी मिलने जाती ? अभी दयावती गई है, और अभी कुमारी ने एक गीत गुनगुनाते हुए वर्तन मॉजना आरंभ किया है !

सहसा किसी ने दर्वाजे पर थपकी दी। इस छोटे-से अशिक्षित परिवार के अतिथि-अभ्यागत भी बहुधा अशिक्षित ही होते हैं, और दर्वाजे पर थपकी देने की जगह, जोर से धक्का देकर, चिल्लाकर पुकारना ही उनके लिये अधिक स्वाभाविक है। यह थपकी सुनकर एक बार चिहुँक उठी। कौन है ? मा तो अभी गई है ! आगंतुक कोई नया व्यक्ति है !

कुमारी के मनोभाव पढ़ने और उनका प्रकाशन करने से हम नहीं डरते, और अपनी सर्वज्ञता पर अविश्वास नहीं करते। आप सुनिए, उसके मन में यह थपकी की आवाज़ सुनकर इठाव यह भाव उठा कि आगंतुक नकुलचंद्र हैं !

अब इसे 'मेटल टेलीपैथी' कहिए, या 'थॉटवेव्स' की करामात समझिए, या संयोग का खेल कह सकते हैं। कुमारी जिन्हें भुलाए नहीं भूलती, और जिनका वादा उसे आज तक याद है, इस थपकी की आवाज़ ने एकवारगी वह साधु-मूर्ति उसकी आँखों के आगे का खड़ी की।

तब वह अध-मँजे वर्तन छोड़ सने शायी दर्वाजे की सरफ़ दोड़ पड़ी।

साँकड़ को उसने हाथ जगा दिया । सहसा सोचा, देख तो ले । किवाड़ की संघ में आँख जगाई । ओह ! सचमुच वही थे । नंगे सिर, चरमा लगाए, मोटी क्रमीज़, ऊँची धोती और चप्पल पहने, ओह ! कैसी सौम्य मूर्ति थी वह ! कितना पवित्र व्यक्तित्व था ! कैसी उच्च आत्मा थी ।

किवाड़ की संघ में आँख जगाए कुमारी मिनट-भर इस साधु-चरित्र युवक के दर्शन-सुख में विभोर रही ।

सहसा किवाड़ फिर थपथपाया गया । कैसी कर्ण-मधुर आवाज़ थी ! कैसा नेत्ररंजक कर-संचालन था ! और इधर कैसी मधुर और पवित्र तन्मयता थी !

साँकड़ तक उसने दुबारा हाथ बढ़ा दिया था । हठात् हाथों में जगी मिट्टी की तरफ़ उसका ध्यान आकृष्ट हुआ, और फिर सत्य ही प्रवनी मैत्री, दुर्गंधित धोती, अपने अस्त-व्यस्त केश और चे-धुजे पैरों का उसे स्मरण हो आया ।

हाय ! कैसी पगली है वह ! कि विना उस तरफ़ ध्यान दिए, अंधाधुंध कुंडी खोजने दौड़ पड़ी ।

और तब सहसा अपने प्रति उसका मन रजानि के भाव से भर उठा ।

छिः ! ऐसी अधीरता किस काम की ! ऐसा पागलपन अत्यंत अनुचित ! ऐसा उद्वेग घोर लज्जा-पूर्ण !.....!

भज्जा इस अवस्था में, खुजा सिर, गंदे हाथ-पैर, दुर्गंधित वस्त्र, कैसे उस विद्वान् से भेंट करे ! माना, वह फ्रैशन-परस्त नहीं है, पर सफ़ाई-पसंद तो है । क्या मुँह लेकर वह इस वेश में उसके सामने पड़े ? आखिर सभ्यता और शिष्टाचार भी तो कोई वस्तु है ! छिः ! कैसी लज्जा का बात है !

तब वह पैर दबाकर पीछे हटी । कहीं सुन न ले । अभी धोती बदलकर, हाथ-पैर धोकर, आकर कुंडी खोजेगी ।

और जो इतनी देर में वह चले जायें ? हाय ! यह विचार उसके मन में न आया । अभी गई, हाथ-पैर धोए, धोती बदली, और आई ! देर ही कितनी जगती है ! दो-तीन मिनट भी नहीं !

थपकी की आवाज़ अब की बार कुछ जोर से फिर सुनाई दी !

हाय ! कैसे कह दे, ठहरे रहो, मैं घर में ही हूँ ! धोती बदलकर, हाथ-पैर धोकर आती हूँ । हाय ! कैसे वह उद्वेग और प्रीत्युक्त से उनकी रक्षा करे ? जाचार है, अब तीन-चार मिनट में आई ।

हाथ-पैर धोए, और कोठरी में घुस गई । कौन-सी धोती बदले ? सभी मैली, सभी गंदी, सभी दुर्गंधित !—केवल एक थी, जो कल्या के घर पहनकर गई थी, वह वहीं रह गई । अरे ! हाँ, याद आया.....।

उस दिन जो रेशमी साड़ी कल्या ने उसे पहनाई थी, वह वापस न ली । अब वह तह की हुई, उसके बक्स में रखी है, उसे ही क्यों न पहन ले ? पर क्यों, भला पराई साड़ी ! नकुल के सामने कैसे पहने ? हुँह ! उन्हें क्या पता ? उन्होंने तो उस दिन भी वह साड़ी उसी के शरीर पर देखी थी ! वह क्या समझेंगे....।

वह क्रामती समय उसने अधिक सोच-विचार में न बिताया । झटपट बक्स खोलकर उसने साड़ी निकाली, और गज्जब की कुर्ची से पहन ली । बक्स खुला छोड़, पल्ला सिर पर रखती हुई वह तब अंधाधुंध बाहर की तरफ चली ।

पर चौक में सब तरफ बर्तन फैले हुए थे । उन्हें वैठावेगी कहाँ ? उसने भीतर से जाकर बर्तनों के ऊपर एक दरी ढाल दी, और जखदी-जखदी थोड़ी दूर में कुछ जगह साफ करके एक पुराना और फटा आसन बिछा दिया । हाय ! इस आसन पर आकर वह बैठेंगे ! हाय ! कोई नया आसन तो है नहीं ! क्या करे ? मजबूर है ! अब अधिक देर नहीं करनी चाहिए । क्या जानें, चले जायें । अब तो बहुत देर

से थपकी की आवाज़ भी सुनाई नहीं पड़ी है ! अरे ! क्या चले गए ? न, न, खड़े होंगे, जख्मी जाऊँ, जख्मी ! जख्मी ! जख्मी !

तब वह जड़खड़ाते पैरों से किवाड़ खोजने लगी ।

आवाज़ नहीं आ रही थी । बाहर किसी के खड़े होने का आभास भी नहीं मिलता था । हाय राम ! क्या चले गए ? न, सीढ़ियाँ उतरकर गली में खड़े होंगे । जा नहीं सकते । चले गए हों..... ! न, न, गए नहीं..... हे राम ! गए नहीं..... ।

तब धड़कते कलेजे से उसने धीरे-धीरे साँकल खोल दी ।

साँकल उसने आवाज़ के साथ खोजी, और पीछे हट गई । यानी वह चाहती थी, नकुलचंद्र स्वयं किवाड़ों में धक्का देकर भीतर आवें । क्यों ऐसा चाहती थी, इसका क्या वैज्ञानिक विश्लेषण हम कर सकते हैं ? हम तो यही कह सकते हैं कि उसे साहस न हुआ, अथवा कविता की भाषा में यह भी कहा जा सकता है कि मिलन की अंतिम सीढ़ी पर पैर रखते नायिका लज्जाती थी, और नायक को उठारना चाहती थी ।

पर हाय ! न किसी ने दर्वाज़े में धक्का दिया, और न भीतर आया ।

—क्या चले गए ? हाय ! क्या चले गए ?

तब कुमारी ने गिरते-उठते, धड़कते हृदय से आगे बढ़कर धीरे-धीरे दर्वाज़ा खोल दिया ।

कोई न था । गली में भी कोई न था । सामने सबक तक कोई आता-जाता दिखाई न देता था ।

हाय ! चले ही गए, चले ही गए !

किवाड़ थामे, धरती की तरफ देखते हुए, कुमारी मिनट-भर पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल खड़ी रह गई । हाय ! कैसे उसका जी माने कि वह चले गए ? कैसी मूर्ख है वह ! कि घर आए देवता को लौटा दिया । हाय ! क्या वह मैली धोती पहने उसका तिरस्कार

करते ? ऐसे साधु पुरुष, ऐसे निर्विकार, सीधे-सादे व्यक्ति क्या उसके झुल्ले केश देखकर विरक्ति प्रकट करते ? न, कभी नहीं, कैसी वह पागल हो गई कि इतनी-सी बात उसकी समझ में न आई ।

हाय ! यह क्या हो गया ? उसने यह क्या कर डाला ? हे ईश्वर, अब कौन उसे समझाए ?—कौन उसके उद्वेग और कष्ट को समझे ? कौन उसके ग्लानि-युक्त हृदय को सांत्वना दे ?

चेहरा उसका लाश की तरह पीला पड़ गया, रक्त की जैसे एक-एक बूंद सुत गई, और हाथ-पैरों का जैसे दम निकल गया !

तब वह शिथिल शरीर लिए, लड़खड़ाते पाँवों से सोने की कोठरी में लौटी, और धड़ाम से खाट पर गिर पड़ी ।

चण-भर बाद ही उसका शरीर हिलने लगा, और सिसक-सिसक-कर रोने की आवाज़ आने लगी ।

हाय ! वह कब से प्रतीक्षा कर रही थी ! कब से वह उनकी राह में आँखें झिझाए बैठी थी ! कब से वह न-जाने कहाँ-कहाँ की बातें, कैसे-कैसे प्रश्न, कैसी-कैसी शंकाएँ और न-मालूम क्या-क्या अपने हृदय में छिपाए हुए थी ! ओह ! घर आए देवता लौट गए ! इस पाप का क्या प्रायश्चित्त वह करे ? इस महामयंकर अनुतापाग्नि को किस प्रकार शांत करे ?

और इस गंभीर, उदासीन, समझदार कुमारी का रुदन उत्तरोत्तर बढ़ने ही लगा ।

कुमारी का चरित्र, इस प्रकरण को पढ़कर, पाठकों की दृष्टि में बहुत गिर गया होगा। हम उसके पक्ष में कुछ कहना अपना धर्म समझते हैं ।

सबसे पूर्व हमें उस घटना का स्मरण दिखाना होगा, जब कण्ठ्या ने, उस दिन, नासिक पत्र में कुमारी के लेख देखे थे । सच कहें, तो वे लेख प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र के लेखों के रूपांतर थे । रूपांतर से मतलब प्रकट नहीं—जिन समस्याओं और दार्शनिक तत्वों पर प्रोफ़ेसर साह्य

ने एक दृष्टि-कोण से अपने विचार प्रकट किए थे, कुमारी ने उन्हीं तरफों को लेकर दूसरे दृष्टि-कोण से उन पर विचार किया था, और इस प्रकार दोनों का आध्यात्मिक और परोक्ष संबंध स्थापित हो गया था।

यह आध्यात्मिक स्नेह और अनुराग कैसा गंभीर और कैसा उन्मादक होता है, इसको तो बस भुक्तभोगी ही ठीक जानते हैं। अब दोनों मिलते हैं। “तासीरे इश्क होती है दोनों तरफ़ जरूर।” इस नकुल के मनोभावों को प्रकट करने में, हिचकते हैं, फिर भी उनकी चेष्टा से आपने अवश्य कुछ-न-कुछ आभास पाया ही होगा। इस आध्यात्मिक स्नेह में उस एक ही भेंट ने एक नए भाव की ही सृष्टि कर दी, और नकुल के इस प्रकार जौट जाने पर कुमारी का यह सारा विज्ञाप स्त्री-हृदय के एक साधारण जानकार के जिये भी स्वाभाविक, शुद्ध और संतुष्ट ही लगेगा।

(१४)

कुमारी खाट पर पड़ी, गंदे तकिए में मुँह छिपाए सिसक-सिसककर रो रही थी।

सहसा एक चमत्कार हो गया।

किसी ने जोर से उसकी पीठ पर हाथ मारा, और कहा—“भरी ओ दीवानी, यहाँ पड़ी क्यों रो रही है ?”

रोना उसका अकस्मात् रुक गया, और विना आँसू पोंछे ही चमककर उसने देखा, करुणा है।

करुणा ? जी हाँ, करुणा।

पलक मारते कुमारी उठकर खड़ी हो गई, और आँसू पोंछते हुए हँसने की चेष्टा करने लगी।

पर हिचकी वैधी हुई थी, चेष्टा व्यर्थ हुई।

“भरे ! भरे ! बता तो—क्यों रोती है ?”

भन्ना कुमारी बता कैसे सकती है ! चुप रही, और जी सँभालने का प्रयास करने लगी ।

“अच्छा चले, बाहर चले ।” करुणा बोली—“देख, बाहर चलते ही हँस न पड़े, तो मेरा नाम करुणा नहीं ।”

सहसा कुमारी की आँखें चमक उठीं । गज्जा साफ़ करके बोली—
“क्यों ?”

“बस, वहीं चले, बाहर ही मालूम होगा ।”

“बता तो—बता तो.....” सुखद आशंका ने कुमारी का सारा रुदन समाप्त कर दिया था ।

“जिनके स्वागत की तैयारी थी, वह आ गए हैं !”

“क्या ? कैसा स्वागत ?”

“जो घर आकर लौट गए थे, उन्हें मैं फिर पकड़ जाई हूँ ।”

जज्जा और सुखद आशंका के पहले भाव ने उसका चेहरा जाल कर दिया ।

“वाह !” अब वह अपनी कैफ़ियत देने लगी—“मैंने किसके स्वागत की तैयारी की थी ? कौन मेरे घर आकर लौट गए थे ?”

करुणा उसकी आँखों से आँखें मिलाकर जोर से हँस पड़ी, और फिर उसके दोनों कंधों पर अपने दोनों हाथ रखकर बोली—“क्यों ? उड़ती है !”

कुमारी जैसे मुष्टियोग-साधन करने लगी । हास्य, उद्वेग जैसे उछलकर बाहर आना चाहता था, पर हँसते ही बात बिगड़ जायगी । गंभीर बनकर बोली—“सच्ची ! बता तो, कैसे उड़ती हूँ ? क्या गोरख-धंधा कर रही है ?”

“री पंगली !” करुणा ने कहा—“देख, सारी पोछ खोज दूंगी ।”

“कैसी पोछ ?”

“अच्छा, ले बता, रो क्यों रही थी ?”

“रो क्यों ... ? मा चली गई थी, अकेले जी घबराने लगी था।”

“ठीक !” करुणा पूछने लगी थी, यह नई साड़ी क्यों पहने है ? पर न पूछ सकी। शायद उसका दिव्य दुखे। कहने लगी—
“एक बात का जवाब तो तूने दे दिया। अच्छा, अब यह बता कि बाहर का दर्वाजा खुला क्यों था, और चौक में दूरी किसजिये बिछा रखी थी ?”

“मैं तो, मैं तो.....” कहते-कहते कुमारी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, मुँह से शब्द न निकल सका।

“अच्छा, बस हो लिया, मैं तो-मैं तो।” अब करुणा ने उसे दर्वाजे की तरफ धकेलकर कहा—“व्यर्थ की सफाई देना चाहती है !”

कुमारी ने इसी में करुणा समझा, और बाहर आई।

बाहर, दहलीज के पास, पतलून की जेबों में हाथ डाले रामशरण खड़ा प्रोफेसर नकुलचंद से वार्तालाप कर रहा था।

आ गए ! आ गए ! आखिर आ ही गए !!

कुमारी की इच्छा एक बार हिचकी बाँधकर रोने की हुई। पर परिस्थिति भी तो देखी जाती है ! न रो सकी, और यथासाध्य अपने उस आवेग के भाव को छिपाकर उसने सहाय्य-मुख नकुलचंद और रामशरण को नमस्कार किया।

पर अब वह अपना भाव चाहे जितना छिपावे, हमसे नहीं छिप सकता। हम तो उसके हृदय में पैठ चुके हैं, और उसका उपदेश को अपने सामने देख रहे हैं। एक अद्भुत आनंद, एक अमूर्त सुख, एक अनिर्वचनीय संतोष की लहर उसके हृदय पर दौड़ गई।

कुमारी जब सिर मुकाकर नकुल को नमस्कार कर रही थी, तो करुणा ने रामशरण से आँखें चार कीं, और उदासी और निराशा की मुस्कान उसके ओठों पर दिखाई दी। रामशरण भी मुस्कुराया

पर उसकी मुस्कान करुणा की मुस्कान से कितनी भिन्न थी, और क्या भिन्नता थी, यह मैं आपको नहीं बता सकता।

“आइए, बैठें !” कहकर रामशरण चूतड़ टेककर, पैर फैलाकर दूरी के एक कोने पर बैठ गया।

हाय ! इस गंदी, फटी, सड़ी हुई दूरी पर वह बैठेंगे ! पर किया क्या जाय ?

करुणा दौड़कर भीतर से एक कपड़ा और उठा लाई, और चौक में बिछा दिया, तब सब लोग बैठ गए।

करुणा ने कहा—“एक ही दूरी बिछाई थी ; दो आदमियों के लिये काफी थी। क्यों कुम्भो ?”

यह करुणा कैसी पागल है। हाय ! हाय ! यह क्या कह रही है ! क्या अच्छी तरह रुसवा करने की ठानी है ?

कुमारी ने अत्यंत विनीत भाव से उसकी ओर देखा।

यह नज़र काम कर गई। कुमारी को लज्जित करने का लोभ करुणा ने त्याग दिया।

पर रामशरण कैसे माने ? कहने लगा—“परंतु यह समझ में नहीं आया कि प्रोफ़ेसर साहब लौटे क्यों जा रहे थे ?”

नकुलचंद्र ने नम्र भाव से कहा—“मैंने कई बार दरवाज़े पर थपकी दी, पर दरवाज़ा न खुला। समझा, शायद सुना न हो, या घर में न हों, बस, चला गया।”

रामशरण तो एक ख़ास बात की क्रसम खाकर आया है। वह नकुल या कुमारी का पिटा आसानी से कैसे छोड़ दे ? वह तो इस कमज़ोर जगह पर खूब प्रहार करेगा, खूब प्रहार करेगा !

पर इतना यह करुणा ने आँख मारकर किस बात का संकेत कर दिया ! इस एक ही संकेत से जैसे रामशरण की नस-नस ढीली पड़ गई ? और, कैसे वह पिटा-स्ता मुँह लेकर चुप हो गया ?

करुणा अब कुमारी पर दयार्द्र हो उठी है। वह उसे संकट में डालना नहीं चाहती, बल्कि इस प्रसंग को ही बदलना चाहती है, और कोई नई बात खजाकर उसका संकोच-भाव नष्ट करना चाहती है।

कहने लगी—“हाँ, देखो कुम्भो, उस वक्त तुमने व्यर्थ पढ़ना छोड़ दिया। अगर पढ़े जाती, तो अब तक बी० ए० पास कर ही लेती।”

कुमारी सहसा करुणा का परिवर्तित भाव न समझी। उसके मन में हुआ कि यह भी उसे अपमानित करनेवाली किसी बात की भूमिका है। एक बार तो चुप ही रहने की इच्छा हुई, पर ऐसे कब तक काम चल सकता था? कहने लगी—“मेरा भाग्य यहन, और क्या कहूँ?”

“छिः! छिः!” अब करुणा को बात बनाने का रास्ता मिल गया। कहने लगी—“भाग्य किस बला का नाम है? अरे, तुम ऐसी बुद्धिमती होकर भी काव्यनिक भाग्य का आश्रय लेती हो?”

कुमारी ने कहा—“काव्यनिक क्यों? भाग्य अनुकूल हुए बिना क्या मनुष्य को अपने किसी प्रयोग में सफलता मिल सकती है? विद्या, धन, सुख, दुःख ये सब भाग्य के अधीन हैं।”

“अरे! अरे! कैसी बात कहती हो! यह बड़ी कायरता की बात है!”

“वेशक!” रामशरण ने कहा—“भाग्य तो मन को संतोष देने के लिये प्रमादी, आलसी और निरुद्यमी मनुष्यों का एक सहारा है! कुछ करना नहीं, धरना नहीं, हाथ-पर-हाथ घरे बैठे रहे, और जब असफलता हुई, तो ठंडी साँस लेकर कह दिया—‘भाग्य की गति!’ छिः! इसी मनोवृत्ति ने हमारे देश को दुबा दिया!”

करुणा ने कहा—“भाग्य या ‘कर्म’ है क्या चीज़? और, होनहार या भावी से क्या अभिप्राय है? जो कुछ कर लिया जाय, उसी का

नाम कम है, और जो कुछ हो जाय, वही भावी है ! कोई दैवी शक्ति भाग्य का रूप धरकर हमारी गति-विधि का संचालन करती है, यह कोरी आंति है ! समझीं ? क्यों ? अब चुप क्यों हो गई ?”

कुमारी ने कहा—“बहन, वाद-विवाद करने की तो सुझमें योग्यता नहीं, पर यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि पुरुषार्थ भाग्य के सामने कोई वस्तु नहीं । पुरुषार्थ आशाओं और कल्पनाओं के ऊँचे-ऊँचे किले बनाता है, और भाग्य क्षण-भर में उन्हें चूर-चूर कर देता है।”

“यह संयोग है !” करुणा ने कहा—“अगर सफलता के मार्ग में रुकावटें न हों, अगर संयोग और दुर्घटनाओं की बाधा न पड़े, तो सफलता का कुछ मूल्य ही न रह जाय, और संसार के किसी काम में कुछ दिलचस्पी ही न रहे ।”

“खैर, तुम विदुषी हो, तुम तर्क के बल पर स्याह को सफ़ेद सिद्ध कर सकती हो । मैं तर्क तो तुमसे क्या किसी से भी कर ही नहीं सकती, पर यह मेरी दृढ़ धारणा है कि मनुष्य भाग्य से जबर कड़ापि नहीं जीत सकता, और भाग्य के ही हाथ की कठपुतली बनकर रहता है । और, मेरा तो विश्वास है कि इन समस्याओं पर तर्क करना भी व्यर्थ है, क्योंकि तर्क से ये सुलझने की जगह अधिकाधिक उलझती ही हैं ।”

“अब यह तो हठ-धर्मी और अंध-विश्वास है !”

सहसा रामशरण ने कहा—“प्रोफ़ेसर साहब, आप चुप क्यों हैं ? आप भी कुछ कहिए न ? आपका इस संबंध में क्या मंतव्य है ?”

“मेरा मंतव्य ?”—नकुलचंद्र ने क्षण-भर विचारकर कहा—“मेरा मंतव्य आपके विरुद्ध है !”

“यानी ?”

“यानी मनुष्य की सफलता-असफलता में प्रारब्ध का हाथ अवश्य होता है ।”

करुणा ने कहा—“जरा स्पष्ट कीजिए ।”

नकुल ने कहा—“प्रतिक्षण मनुष्य के अनेक संस्कार चलते रहते हैं । उन संस्कारों के अनुसार मनुष्य को कुछ निर्दिष्ट परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है । मनुष्य-योनि में आकर मनुष्य को ऐसे संस्कार बाँधने की स्वतंत्रता मिलती है । केवल इसी जन्म में उसके कार्यों पर किसी दैवी शक्ति का शासन नहीं होता, अर्थात् प्राणी की आर्थात् विकसित और सर्वोत्कृष्ट अवस्था यही है । इसी अवस्था में बहुत-से प्राणी पाप-कर्मों में लिप्त रहकर जन्म-जन्मांतर तक उनका फल भोगते हैं, और बहुत-से अपनी आत्मा को समस्त इस आवागमन के चक्र से छूट जाते और अनंत, अनिवंचनीय मोक्ष-सुख को प्राप्त करते हैं ।”

करुणा कुछ समझी, कुछ न समझी, पर भाग्य के संबंध में अपने संतन्य का विरोध सुनकर झुंझला उठना उसका स्वभाव है । झुंझलाकर उसने पास ही से जाती हुई एक चींटी को पैर से कुचलकर मार डाला, और कहा—“देखिए, छण-भर पहले मैं जानती भी न थी कि मैं किसी चींटी को मारूँगी, और न यह चींटी ही जानती होगी कि उसकी हत्या, किसी वाद-विवाद के फल-स्वरूप, कुमारीदेवीजी के घर में, प्रोफेसर नकुलचंद्र महोदय व महाशय रामशरण महोदय के समक्ष, श्रीमती करुणादेवीजी के द्वारा होगी । कहिए, यह कैसे हो गया ? यह चींटी कितनी आशाएँ हृदय में छिपाए न-जाने कहाँ जा रही होगी ! अब बताइए, इसका भाग्य किधर गया ? क्यों कुम्भो ! क्या कहती हो ?”

कुमारी ने कहा—“मैं तो यही कहूँगी कि इसके भाग्य में तुम्हारे हाथों इसी प्रकार मरना लिखा था, और तुम्हारे भाग्य में एक निर्दोष प्राणी के घात का पाप कमाना !”

“हिम्” अब करुणा ने स्त्रीरूप में कहा—“अनमिसपिण्ड कंजयै-

‘म’ छिः ! छिः ! तुमसे बात करनी बेकार है। आप कहिए, प्रोफेसर साहब ?”

“बात यह है,” नकुलचंद्र ने गंभीरता-पूर्वक कहा—“मैं पुनर्जन्म मानता हूँ, और इसलिये मौत-जिंदगी भाग्य के अधीन नहीं समझता। किसी व्यक्ति का वर्तमान शरीर अब छूट जाय, तो क्या, और दस वर्ष बाद छूटे, तो क्या ! अगर अपने कर्मों का भोग करने इस जन्म में नहीं किया, तो दूसरे में करेगा, दूसरे में नहीं, तो तीसरे में करेगा, तीसरे में नहीं, तो चौथे में।

किन्तु तो बुरी पढ़ी, पर करुणा इसका भी उत्तर देने की तैयारी करने लगी।”

सहसा रामशरण ने यह प्रसंग यहीं समाप्त कर दिया। बोला—यह प्रसंग अधिक नहीं बढ़ना चाहिए। हम कुमारीजी से भेंट करने आए हैं, उनके घर को ‘डिनेटिंग क्लब’ बनाने नहीं।” इत्यादि।

वस, फिर उस संबंध में कोई बात न उठी।

पर ज़रा कुमारी के हृदय की साँकी तो लीजिए। देखिए, कैसे गीतल, मधुर, अनिर्वचनीय आनंद की लहरें वहाँ दौड़ रही हैं। देखिए, वह कैसे अभूतपूर्व सुख में विभोर हो गई है ! देखिए....।

“प्रोफेसर साहब ! जय ये लोग कुमारी के घर से निकलकर बाज़ी में आए, तो रामशरण ने कहा—“आपको करुणा की माताजी बताती थीं, आप ज़रा वहाँ जाइए।”

नकुल ने पूछा—“आप न चलेंगे ?”

“न, हम लोग और जगह जाते हैं।”

करुणा को लक्ष्य कर बहुवचन का प्रयोग किया गया था।

सिर झुकाकर निर्मल-हृदय नकुल एक तरफ़ चल दिए, और ये दोनों दूसरी तरफ़।

ज़रा आगे बढ़कर करुणा ने कहा—“क्यों राम शरण,.....।”

"क्या ?"

"भूठ बोले ?"

"हाँ ।"

"क्यों ?"

"फिर पूछ लेना ।"

"अभी बताओ ।"

"अच्छा सुनो, एक तमाशा तुम्हें दिखाया, दूसरा और दिखाना चाहता हूँ ।"

"क्या ? कैसा तमाशा ?"

"अब यह मैं पहले से कभी न बताऊँगा ।"

करुणा का हृदय धक-धक कर रहा है, और कुमारी के घर उसके हृदय में जो आग सुलगी थी, वह अब क्रमशः धधकनी शुरू हो गई है !

(१५)

"अरे ! यह किधर चल रहे हो ?" एक परिचित गली के मोड़ पर घूमते हुए करुणा ने पूछा ।

"चली आओ," रामशरण ने पीछे पीठ न फेरकर कहा—"अभी सब मालूम हो जायगा ।"

आगे-पीछे दोनों प्रोफेसर नकुलचंद्र के घर पहुँच गए ।

करुणा कई बार यहाँ आई है, पर सदा बाहर से ही लौट गई है; भीतर जाने का अवसर उसे नहीं मिला है, या यों भी कहा जा सकता है कि प्रोफेसर साहब ने नहीं दिया है ।

"वह तो हैं नहीं, यहाँ क्यों लाए ?"

करुणा की इस बात का उत्तर रामशरण ने न दिया, और "अभी आया !" कहकर मकान में घुस गया ।

रहना तो हमें करुणा के साथ चाहिए, पर रामशरण की संदेह-पूर्ण

चेष्टा देखकर हम उसके पीछे-पीछे जाने को बहुत उत्सुक हैं। अतएव हम चबते हैं, आप भी चलिए।

बुढ़ा सो रहा था, या यों कहें, अक्रीम की पीनक में ऊँघ रहा था।

रामशरण ने झँझोड़कर उसे जगाया।

“कौन है ? नकुल ? रामशरण ?” उसने जागकर पूछा।

“हाँ, मैं रामशरण हूँ। होश कीजिए।”

“आओ भैया, कहो, मैं होश में हूँ।”

बुढ़े के मुँह से यह अभूतपूर्व स्नेह-संशोधन कैसे निकल पड़ा ?

रामशरण ने कहा—“देखिए, मैं उसे ले आया हूँ।”

“किसे ?”

“उसे ही।”

कहकर उसने बुढ़े के कान में कुछ कह दिया, शायद ‘कहणा’ का नाम कह दिया, और बोला—

“देखिए, ज़रा नौद खोलिए, पुत्र की और अपनी रक्षा करना चाहते हैं, तो.....।”

बुढ़े ने हड़थड़ाकर कहा—“हाँ-हाँ ! मेरी नौद खुली हुई है। तुम बेफ़िक्र रहो.....हाँ, ले.....आओ।”

“देखिए, जैसे बताया है, वैसे कीजिएगा, ऐसा न हो, सारे करे-कराए पर पानी फिर जाय !”

“ठीक है, तुम ले आओ।”

“हाँ, देखिए, नौद अच्छी तरह खोल लीजिए, इस वक्त की ज़रा-सी हड़ता सारे संकट को दूर कर देगी। ऐसा न हो.....।”

“अरे तू ला तो सही।” बुढ़े ने सहसा करारे स्वर में कहा—
“मैं अच्छी तरह उस लौंडिया की खबर लूँगा।”

बुढ़े का पिछला वाक्य सुनकर जाता-जाता रामशरण ठहर गया,

और दाँत-चले जीभ दबाकर बोला—“हैं ! यह क्या ? हाथ-बाध न उठा बैठना.....।”

“न-न, ऐसा नहीं होगा ।” कहकर बूढ़े ने दाँत निकाल दिए ।

“हाँ, वस, दो-चार कढ़ी-कढ़ी बातें.....।”

कहकर रामशरण करुणा के पास आया ।

मेरे ईश्वर ! कैसा भयानक पदग्रंथ !

बाहर आकर उसने करुणा से कहा—“आओ !”

करुणा के नेत्रों में न-जाने क्यों दो आँसू छलछला रहे थे, उसने पलकें विस्तृत कर उन्हें छिपा लिया, और पूछा—“कहाँ ?”

“भीतर आओ ।”

“क्यों ? नकुलचंद्र तो हैं नहीं; क्या कहूँगी ?”

करुणा के स्वर में भयानक निराशा, खिन्नता और अव्यक्त वेदना थी । पर रामशरण ने उस पर ध्यान न दिया, वह तो अपने पदग्रंथ को अंत तक पहुँचाने में ही व्यस्त था, उसे एक स्त्री की भावुकता और कोमल-हृदयता का ज्ञान इस समय कहाँ ?

कहने लगा—“आओ, उनके पिता से तुम्हारा परिचय करा दूँ !”

करुणा ने निर्णीत और विरक्त स्वर में कहा—“आओ, चलो, क्या कहूँगी मैं परिचय करके ?”

रामशरण की आँखें एक बार चमक उठीं । क्या पहला ठीर ही काम कर गया है ? क्या.....

पर जो केवल संदेह हो ? और, वह हल्का ज़ाह्रम पलक मारते भर जाय ? न-न, प्रयोग अधूरा न रहने देना चाहिए ।

तब उसने आग्रह-पूर्वक कहा—“आओ तो, यह तुम्हें बुझाते हैं ।”

“मुझे बुझाते हैं !” करुणा ने ज़रा तवज्जह देकर कहा—“मुझे बुझाते हैं ! पर रहने ही दो, अब क्या कहूँगी उनसे मित्रकर !”

यानी, अगर वह बुलाते हैं, तो ऐसा न हो, उनकी भेंट उसके निर्णय में बाधक बनकर खड़ी हो जाय !

पर भोली करुणा, देखिए न, सत्यता से कितनी दूर है !

रामशरण ने स्वर में मीठी ताड़ना भरकर कहा—“क्या राजब करती हो ! जय वह बुलाते हैं, तो तुम्हें मिलना तो चाहिए ही !”

करुणा ने अपना खिन्न मुख उठाकर रामशरण की तरफ देखा, और धीरे से मुस्करा दिया ।

रामशरण इस मुस्कराहट का मतलब तो क्या समझा; मगर जो समझा, वह उसके हृदय में आग दहका देने को काफी था । उसने समझा, भावी श्वशुर के समक्ष जाने की कल्पना मुस्कराहट का रूप धारण करके प्रकट हुई है । ओहू ! अभी तक भाव नहीं मिटा है !

पर इस मुस्कराहट का असली मतलब, मेरे मनो-वैज्ञानिक पाठको, क्या आपको भी बतलाना पड़ेगा ? आप शायद समझ गए होंगे । पर आप समझे हों या नहीं, मुझे इससे राज्ञं नहीं, मैं साफ-साफ उसका मतलब समझाकर आपको मूर्ख समझने की अनुदारता न करूँगा । आप अगर न समझे हों, तो इस जिज्ञासा को मन ही में छिपा डालिए । इस जिज्ञासा के छिपा डालने में जो मज्जा और जो कसक है, उसका अनुभव आपको दो-चार मिनट आँखें बंद करने पर ही हो जायगा ।

देखिए, इतना मैं कह दूँ, इस मुस्कराहट को समझने के लिये आप बहुत गहरे जाइए—बहुत गहरे जाइए ।

हाँ, तो मुस्कराकर उसने कहा—“अच्छा, चलो !”

दोनों भीतर गए । बुढ़ा अपनी फंजी आँखें पूरी खोले इधर ही जाकर रहा था ।

कैसी गंदगी है ! ये गहरे-गहरे खड्ड, यह ऊबड़-खावड़ फर्श,

यह अधेरा स्थान ! “रामशरण ! तुम मुझे किस नरक में बसीट जाए !” मुँह पर रुमाज रखकर आखिर करुणा कह ही उठी ।

न परिचय, न नाम, न लेन, न देन, बुढ़ा सहसा चौंख उठा—
“क्यों ? इस नरक-निवासी तेरे बाप के स्वर्ग-कानन में बसना तो नहीं चाहते हैं !”

करुणा को जैसे साँप ने डस लिया, निस्तब्ध, निर्वाक्, वज्राहत-सी बेचारी कोमल-हृदया लड़की जहाँ-की-तहाँ खड़ी रह गई !

काम बिगड़ गया ! काम बिगड़ गया !! जिस ढंग से परिचय कराकर, बातें बनाकर करुणा का अपमान कराना रामशरण चाहता था, और साथ ही खुद सुखीरु बना रहना चाहता था, वह ढंग सब उलझ-पुलझ हो गया, बखि यही नहीं, एक बार मन-ही-मन वह विषद् की आशंका से काँप भी उठा ! कहीं वह मेरा कौशल समझ न जाय !

“आपले इनका परिचय करा दें !” उसने इस कटुता पर झाक डालते हुए असंग को प्रिय बनाने की चेष्टा की—“आप यावू रामकिशोर.....!”

“अरे मैं जानता हूँ, यह उसी किस्तान रामकिशोर की लौंदिया है, जिसने अपने बाप-दादों के मुँह पर घूस त्याही फेरी है ।”

कहते-कहते बुढ़े को जोर की खौंसी आ गई ।

जेब से रुमाज निकालकर रामशरण ने मुँह का पसीना पोछा या बेलाग कहें, तो मुँह का भाव छिपाने की चेष्टा की, यह भी कहा जा सकता है ।

और करुणा ?

करुणा तो जैसे पत्थर की मूर्ति बन गई है, न हिलती है, न डोलती है, न कुछ बोल सकती है । बस, शौंखों की पुतलियाँ इधर-से-उधर और उधर-से-इधर घूम रही हैं ।

बुढ़े की खौसी थम गई, और वाक्-प्रवाह पुनः प्रारंभ हुआ ।

“अरे ! तुम लोग मेरे जाल को मुझसे छीनकर मेरा सर्वनाश करना चाहते हो ! अरे, अपने साथ ही तुम उसे भी क्रिस्तान बना दोगे ! अरे लड़की ! तू तो कुछ लाज कर ! तू हिंदू के घर में पैदा हुई है, और इस तरह फिर रही है ! अरे ! तू मेम है, तो किसी साहब को पसंद कर, मेरे भोले-भाले बेटे पर तू क्यों रोमी है ! मैं तेरे हाथ जोड़ता हूँ, तू मुझ पर दया कर.....!”

कहते-कहते बुढ़ा फासर होकर रो पड़ा ।

बुढ़े-बुढ़ियों की ऐसी रुलाई से इस बीसवीं सदी में पैदा हुए हमारे बहुत-से पाठक परिचित होंगे । इस रुलाई को सुनकर द्रवित होने की जगह कैसा उन्मादक क्रोध और खोभ उत्पन्न होता है, इसका अनुभव उन्हें होगा ।

अस्तु । बुढ़े की इस रुलाई से आप भी द्रवित न हों । यह रुलाई फलेजा फाड़कर नहीं निकली है, न इसमें शरीर का सख घुला हुआ है, यह तो केवल अभ्यास है ।

न, निष्ठुर मैं नहीं हूँ, यह आपका अन्याय है ! खैर, आपकी इच्छा ! देखिए, मैं औपन्यासिक हूँ, सर्वज्ञ हूँ, और मध्यस्थ हूँ । आप इन तीनों बातों पर शौर कीजिए, और मेरे अप्रिय कर्तव्य का ज्ञान आपको स्वयमेव हो जायगा । इससे अधिक अपनी सफ़ाई देने की मुझे आवश्यकता नहीं ।

बस, बहुत हुआ । सच यह है कि बुढ़े का आचरण रामशरण की शिक्षा के अनुसार नहीं हुआ, न उठना कड़ा और न व्यवस्थित, पर इतने से काम चल जायगा, बल्कि आगे बढ़ने से कौशल खुल जायगा । रामशरण ने करुणा की मूर्ति देखकर यह समझ लिया, और श्री-हत्त चेहरा बनाकर बोला—“आज्ञो, करुणा, चलें ।”

“हाय ! हाय !” जब इन दोनों ने पीठ फेरी, तो बुढ़ा जोर-जोर

से छाती पीटता हुआ बोला—“अरे मेरे राम ! मेरे बेटे को बचाइयो ! इस रामकिशोर का बेड़ा गार्ज करियो । हाय ! इस मेम साहब...।”

बस, इससे आगे करुणा और रामशरण ने कुछ नहीं सुना ? जब उन्होंने नहीं सुना, तो हम क्यों सुनें ?

करुणा भी चुप है, और रामशरण भी । कारण चाहे मित्र-मित्र हों, मगर ‘चुप’ एक-सी है । वही सिर झुकाए चलना, वही डरते-डरते खिचती हुई साँस लेना, वही लंबे-लंबे ढग रखना, बाह्य चेष्टाएँ दोनों की बिल्कुल मिश्रित-जुलती थीं ।

“अब तुम तो अपने होस्टल में जाओ ।” एक तिराहे पर पहुँचकर सहसा करुणा ने कहा—“इधर से चले जाओ, नज़दीक पड़ेगा ।”

“और तुम ?” साहस पाकर रामशरण ने भयग्रस्त स्वर में पूछा—
“तुम कहाँ जाओगी ?”

होने को तिराहा था, मगर आता-जाता कोई न था । एक तरफ़, कुछ दूर पर, कुछ बपचे घेरे-तार का खेल खेल रहे थे । पास ही पशुओं के पानी पीने के लिये एक पक्की प्याऊ थी, और एक पीपल के बड़े पेड़ ने उस पर छाया कर रखी थी । इस पीपल के पेड़ पर कुछ पक्षी बैठे अपने अस्तित्व की सूचना दे रहे थे ।

इन दोनों की बातें सुननेवाला और कोई वशर वहाँ पर न था ।

करुणा ने कहा—“मैं तो घर जाऊँगी ।”

“कोठी ?”

“हाँ ।”

तो फिर करुणा ने भला उसे ऐसा आदेश क्यों दिया ? उसका ऐसा तिरस्कार करने का साहस उसने कैसे और किस अधिकार पर किया ? रामशरण एक बार सिर से पैर तक काँप उठा ।

तब सहसा इधर-उधर देखकर उसने करुणा का हाथ पकड़ लिया, और कहा—“करुणा, मुझे माफ़ करो !”

करुणा हँस पड़ी, और धीरे से हाथ छुड़ाकर बोली—“माफ़ !
अरे ! तुमने क्या अपराध किया ?”

रामशरण करुणा से, किसी से भी, लिपटकर रोना चाहता है, पर
ऐसा करे कैसे ? उसने नेत्रों में आँसु भरकर स्थिर दृष्टि से करुणा को
ताका, और कातर स्वर में कहा—“करुणा, आज एक बात का
साफ़-साफ़ जवाब मैं चाहता हूँ ।”

“क्या ?” रामशरण क्या पूछता है ?

“मुझे निराश तो न करोगी ? यह बता दो ।”

करुणा क्षण-भर चुप खड़ी रही, और फिर बोली— “.....न,
व्याह तो मैं तुमसे ही करूँगी !”

वाक्य उसका अधूरा-सा था, जैसे पहला हिस्सा उसने मन में ही
कह लिया हो !

पर रामशरण को तो पिछले हिस्से से ही राज़ है, उछलकर
बोला—“क्या सचमुच ? वचन देती हो ?”

“हाँ, बस, अब तुम जाओ, मैं भी जाती हूँ ।”

रामशरण के साहस और हर्ष का क्या ठिकाना ! लहककर
बोला—“तो चलो, ज़रा घूम आएँ । घर जाकर अभी क्या
करोगी ?”

“थोड़ी देर रोऊँगी !” तब क्षण-भर बिना रुके वह सीधी
चल दी ।

(१५)

नकुलचंद्र धीरे-धीरे रोगिणी के कमरे में घुसे । उज्ज्वल पिस्तरे
पर करुणा की मा अचेत-प्राय लेटी थी । सिरहाने पंखा लिए एक
दासी थी, और पास ही झुके हुए रायबहादुर रामकिशोर मौजूद थे,
और दाहनी तरफ़, ज़रा हटकर, क्लर्क पर एक प्रौढ़ा घूँघट निकाते
बैठी थी ।

नकुल ने भीतर पहुँचकर धीरे से कहा—“क्या हाल है ?”

रामकिशोर ने चौंकर उनकी तरफ देखा। उनके नेत्र अश्रु-पूर्ण थे। कहने लगे—“क्या हाल बतलाऊँ बेटा ? आओ, देख लो—कुछ दिनों के दर्शन-मेले हैं। तुम भी बेटा इनके स्नेह से थोड़े-बहुत परिचित हो ही। जब तक हाथ-पैर चलते रहे, तुम्हारे ब्रिये तो भोजन सदा अपनी देख-रेख में ही बनवाती थीं। याद है तुम्हें ? कैसे दुलार से पंखा हाँकती-हाँकती, तुम्हें खाना खिलाती थीं ? तुम कहते—‘मा ! कंठ तक भर चुका है, अब गुंजाइश नहीं।’ और यह तला हुआ पापड़ तुम्हारी थाली में डालकर कैसे स्नेह से तुम्हें विवश करती थीं ? इनके हाथ की चटनी और रायते की प्रशंसा करते-करते तो तुम थकते ही न थे ! बेटा नकुल, तुम्हें देखते ही किस प्रकार खिल उठती थीं, और किस प्रकार हुलसकर तुम्हारा स्वागत करती थीं, वे दृश्य संभवतः तुम भूलें न होगे। देख लो, बेटा, आज उस स्नेह-मूर्ति की क्या दशा है ! देखो, आगे बढ़ आओ, उस प्रफुल्ल, स्वर्गीय मुख पर जैसे किसी ने स्याही फेर दी है। हाय ! कभी इन्होंने किसी से ईर्ष्या की, कभी किसी से बुरा बोल न बोला, कभी किसी का बुरा न चाहा, फिर भी न-जाने क्यों ईश्वर ने इनकी यह दशा कर दी ! हाय ! कभी अपने-पराए में भेद न समझा, भंगी-चमार के बच्चों तक से सदा स्नेह-स्निग्ध स्वर में बोलीं, तो भी ईश्वर ने उसके घर के दोनों जलते चिराग बुझा दिए, दोनों खिले फूल कुचल दिए ! आओ बेटा, देख लो...”

कहकर रामकिशोर ज़रा पीछे हट गए।

नकुल आँखों में आँसू भरे आगे बढ़े, और झुककर धीरे से पुकारा—“मा, कैसी हो ?”

रोगिणी ने निर्विकार भाव से नेत्र खोल दिए, और स्थिर दृष्टि से

नकुल का मुँह ताकने लगीं, जैसे चेहरे पर कोई परिवर्तन जाना चाहती हैं, पर नहीं ला पातीं, नहीं ला पातीं ।

नकुल ने द्रवित कंठ से पूछा—“मा, कैसी हो ?”

मा अपनी सफेद आँखें खोलते निरंतर उन्हें ताकती रहीं, मानो कहती हैं—“मेरी आँखों में पढ़ जाओ !”

नकुल धीरे से रोगिणी की शय्या पर एक किनारे बैठ गए, और उनका एक दुर्बल, लकड़ी-सा हाथ उठाकर धीरे-धीरे उसे दवाने लगे ।

थोड़ी देर बाद रोगिणी ने पुनः आँखें खोलीं, और चीख कंठ से कुछ कहा ।

नकुल ने कान उस तरफ मुकाकर कहा—“क्या कहती हो मा ?”

ज़रा-ज़रा करके शब्द उसके मुँह से निकलने आरंभ हुए—“वेवे.....वेटा !।”

“हाँ, मा बोलो !”

“वेटा ! करुणा तुम्हारा है !”

बड़ी सुरिकल से अंत में रोगिणी ने यह वाक्य कह डाला । यह बात सुनी, तो नकुल एक बार सजाटे में आ गए । अभी रास्ते में क्या निश्चय करके आए हैं ? आज के करुणा के आचरण ने उन्हें क्या समझने पर ध्वंश किया है ? करुणा के पिता के आग्रह को वह कितना अनुचित और अनधिकार-पूर्ण समझने लगे हैं ? अपने और करुणा के जीवन-सहयोग की असंभवता का किस प्रकार वह स्पष्ट आभास पा चुके हैं ?

आप ही बताइए, अब पुनः सहसा उस पढ़ी-लिखी, समझदार, वयस्क लड़की के असली मनोभावों का अनुमान लगाकर भी कैसे उनके विरुद्ध उससे विवाह करने का विचार वह कर सकते हैं ?

रामकिशोर ने भी रोगिणी की बात सुन ली थी । जब नकुल कुछ

उत्तर न देकर चुप बैठे रहे, तो वह ज़रा ऊँचे स्वर में बोले—“बेटा नकुल ! सुनते हो ? क्या कहती हैं ?”

नकुल भयानक संकट में पड़े । क्या जवाब दें ? और बिना जवाब दिए कैसे इस प्रकरण को बदला जाय ?

रामकिशोर ने पुनः कहा—“बेटा नकुल ! सुन लिया ? कहती हैं—कल्याण-तुम्हारी है । मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई तुम्हारी माँ तुम्हें यह आदेश करती है ।”

नकुल के मुँह से तब भी कोई शब्द न निकल सका, और उन्होंने सिर झुका लिया ।

रामकिशोर इस सिर झुकाने से कुछ और ही समझे । पास ही एक अपरिचित प्रौढ़ा बैठी थी, सिरहाने दासी खड़ी थी—उन्होंने सोचा, भला इस स्थिति में नकुल मूक-स्वीकृति के अतिरिक्त कैसे और कुछ कह सकता है ?

“अच्छा नकुल,” तब सहसा उन्होंने कहा—“मेरे पास होकर जाना, मैं डॉइंग-रूम में बैठूँगा ।”

बड़ी आसानी से संकट टल गया । नकुल ने धीरे से कह दिया—“बहुत अच्छा !”

“अच्छा, अब तुम्हें पहचाना, तुम्हीं नकुलचंद्र हो, उस दिन वद-हवासी में ठीक न देख सकी ।” रामकिशोर के जाते ही उस फर्श पर बैठी हुई प्रौढ़ा ने सहसा घूँघट उलटकर हँसते हुए कहा ।

पच्चीस वर्ष के नकुलचंद्र प्रौढ़ा का यह व्यापार देखकर कुछ लजा गए, और नेत्र झुकाकर बोले—“जी हाँ !”

“मुझे पहचानते हो ? मैं कुमारी की माँ हूँ ! जिससे उस दिन कुमारी का पता पूछा था ।” प्रौढ़ा ने कहा ।

ओह ! याद आ गया ! ठीक है ! इन्हीं ने तो उस दिन द्वार खोलकर कुमारी के निमंत्रण में जाने की बात कही थी ।

नकुल के उत्तर की बात देखे बिना ही दयावती कहती रही—
 “कुमारी तुम्हारी बड़ी प्रशंसा करता थी। उस दिन करुणा के निमंत्रण
 में आई थी न, कहती थी, उसी दिन तुमसे उसकी भेंट हुई। (फिर
 कुछ ठहर कर) बल्कि हाँ, उसने तो नहीं कहा, करुणा ने कहा था।
 फिर करुणा के चले आने पर उसने तुम्हारा परिचय मुझे दिया
 था।.....तुम भी तो लेख लिखते हो बेटा ?”

दयावती का प्रश्न ऐसा था, मानो संसार में उसी की बेटी
 लिखना जानता है। नकुल ने मुस्किराकर कहा—“जी हाँ।”

“हाँ, तो तुम्हारे दो-चार लेख कुमारी ने मुझे सुनाए-समझाए थे।
 मैं तो अनपढ़ ही हूँ बेटा, तुम्हारे लेख बिलकुल तो समझ में न आए,
 पर जितना समझ सकी, वह बहुत श्रद्धा लगा।”

दयावती की पहली बातें सुनकर उसके प्रति नकुल के मन में जो
 सूक्ष्म श्रद्धा का भाव उत्पन्न होता जा रहा था, वह उसकी पिछली
 बात सुनते ही सहसा नष्ट हो गया। कोई बिना जाने आत्म-समर्पण
 कर दे, अथवा अपनी कमजोरी मान ले, तो उसके प्रति हमारे मन
 में सहसा घोर सद्बुद्धि का उद्रेक हो आता है, और उस पर
 प्रौढ़ा के इस स्वर में तो, मातृ-स्नेह से वंचित नकुल को, उसी पूर्व-
 परिचित वात्सल्य का रस दिखाई दिया। अतएव उनकी उस श्रद्धा
 का स्थान सहसा भक्ति और गादगद्य ने ले लिया।

और, तब दयावती की बातों की ओर भी उनका ध्यान आकृष्ट
 हुआ।

कुमारी ने प्रशंसा की ! कुमारी ने प्रशंसा की !! कुमारी ने प्रशंसा
 की !!! लेख पढ़कर सुनाए ! लेख पढ़कर.....

ये दो बातें कितनी बार उनके मन में ध्वनित-प्रति-ध्वनित हुईं,
 इसकी ठीक-ठीक संख्या हम क्या, कदाचित् वह स्वयं भी न बता सके।

दयावती ने आगे क्या-क्या कहा, वह सब सुनने की न हमें क्रूरत

मिली, न नकुल को। हाँ, उनका यह वाक्य अवश्य हमने और उन्होंने ग्रहण किया—“तुम तो सचमुच बहुत ही सुशील लड़के हो बेटा !”

इस नकुल में न-जाने क्या है कि देखते ही सबको अपनी तरफ खींचता है ! केवल करुणा को नहीं। जी हाँ, केवल करुणा को नहीं ! इस नकुल के व्यक्तित्व में न-जाने क्या विशेषता छिपी है कि प्रत्येक व्यक्ति मिलते ही उसे भाँप लेता है ! केवल करुणा नहीं ! जी हाँ, केवल करुणा नहीं !! यह नकुल न-जाने कैसा अलौकिक प्राणी है कि प्रत्येक व्यक्ति मिनट-भर बात करते ही उसे पहचान लेता है ! केवल करुणा नहीं ! जी हाँ, केवल करुणा नहीं !!

करुणा ! सहसा करुणा ने कमरे में पदार्पण किया।

चेहरा उसका सुता हुआ ज़रूर है, मगर इढ़ है। थोखें उसकी ढबढबाई हुई ज़रूर हैं, मगर स्थिर हैं। पैर उसके लड़खड़ाते ज़रूर हैं, मगर सतर हैं।

साकर वह सीधी लकीर की तरह नकुल के सम्मुख खड़ी हो गई, और बिना कुछ हक-दफ किए बोली—“प्रोफ़ेसर साहब ! एक बात सुनिए।”

नकुल तो उसी की तरफ देख रहे थे, अब और अधिक आकृष्ट हो गए।

“देखिए,” जैसे कोई पत्थर की मूर्ति खड़ी बोल रही हो, इस प्रकार करुणा बोली—“रामशरण को जमा कर दीजिए।”

यह सहसा करुणा का भाव कैसा हो गया ? वह उरफुल्लता, वह उच्छ्वसलता, वह बच्चापन, सब सहसा कहाँ उढ़ गए ? मेरे ईश्वर ! यह कैसा नाटकीय परिवर्तन !!

नकुल ने नेत्र विस्मय-विस्फारित कर कहा—“क्या ? क्या कह रही है आप ?”

करुणा पागल तो नहीं हो गई है ?

“आपने सुना तो ।” करुणा ने धीरे से कहा—“प्रोफ़ेसर साहब, मैं कहती हूँ, प्रार्थना करता हूँ, आप रामशरण को क्षमा करें !”

अरे ! कैसी क्षमा ? किस अपराध की क्षमा ? करुणा पागल तो नहीं हो गई है ?

बोले—“उन्होंने क्या अपराध किया ?”

“उसने—उन्होंने ?” करुणा बोली—“उन्होंने आपसे झूठ बोला है, आपको धोखा दिया है !”

न, करुणा पागल नहीं हुई है; कुछ-न-कुछ बात अवश्य है !

नकुल बोले—“क्या धोखा दिया है ?”

“मा ने आपको बुलाया नहीं था, रामशरण ने आपको अलग करने और अपने घर न जाने देने के लिये झूठ बोलकर आपको इधर भेज दिया । मा ने आपको नहीं बुलाया था ।”

नकुल को अभी तक इसका संदेह भी न हुआ था ! शरार मा ने बुलाया होगा, तभी तो आते ही वह बात कही थी ।

और न भी बुलाया था, सो बात साधारण है ! और रामशरण का अपराध भी साधारण है, करुणा उसके लिये इतनी व्यग्र क्यों है ?

करुणा से पूछा, तो उसने इन प्रश्नों का उत्तर न दिया, और कहा—“मैं हाथ जोड़ती हूँ, रामशरण को क्षमा कर दाजिए । कष्टिए, कर दिया ।”

हारकर नकुल ने उसी तरह कह दिया ।

तब करुणा, उसी तरह, सीधी सतर-सी कमरे से बाहर निकल गई ।

(१७)

“आओ, बेटा, आओ ।”

“न-न, मैं बैठा हूँ, आप पढ़ लीजिए !”

“ओह ! अब क्या पढ़ूँगा !” रामकिशोर ने पुस्तक बंद करते हुए कहा—“पढ़ने के दिन गए बेटा ! अब तो ये काली लकीरें साँप-साँपोले-सी लगती हैं । एक वह समय था कि हजार-हजार पेज की कानूनी पुस्तक आठ घंटे में पी जाता था, एक यह है कि आधा-पेज पढ़कर ही सिर चकराने लगता है । समय ही तो है !.....वहाँ, इतनी दूर क्यों बैठे हो ? आओ, इधर आ जाओ, मेरे पास आकर बैठो । लो, आओ, इस कुर्सी पर.....।”

कहकर रामकिशोर अपने हाथ से एक बोझिल कुर्सी सरकाने का प्रयत्न करने लगे ।

नकुल जल्दी से उठे, और उस निर्दिष्ट कुर्सी पर, रामकिशोर के बिल्कुल पास, बैठ गए ।

“बेटा नकुल, जानते हो, मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है ?”

“जी नहीं ।” नकुल ने कुछ अधूरी-सी कल्पना की ।

“देखो बेटा,” रामकिशोर ने अपनी कुर्सी का रुख ज़रा फ़िराकर कहा—“करुणा की मा तो अब बचेगी नहीं । अब मुझे भी इसका निश्चय हो चुका (कहते-कहते आँखों में आँसू भर आए) । उनकी एक अभिलाषा है, वह चाहती हैं, करुणा का विवाह देख लें । उस समय जब मानो मुर्दा घर में पड़ा हो, एक आँख हँसकर एक आँख रोकर बेटो का व्याह करने में मुझे जितना कष्ट होगा, मैं ही जानता हूँ । पर उनकी इस समय की कोई भी अभिलाषा पूर्ण करने के लिये मैं सभी प्रकार का त्याग करने को प्रस्तुत हूँ । यल, यही कहने को मैंने तुम्हें बुलाया है ।”

नकुल इस संकट से छूटने का कोई उपाय अभी तक निश्चय न कर पाए हैं । क्या जवाब दें ? कैसे इनकार करें ?

दम साधे चुप... ।

रायबहादुर रामकिशोर फिर बोले—“देखो बेटा, बार-बार वह

बात कहते कुछ संकोच तो होता है, पर कहे बिना बनता नहीं। सुनो, बेटा करुणा या उसका पति ही मेरा उत्तराधिकारी होगा। बल्कि मैं यह कह दूँ कि मन में मैं तुम्हें ही अपना उत्तराधिकारी निश्चित कर चुका हूँ। खैर, सुनो बेटा, करुणा के साथ-साथ अपना सर्वस्व भी तुम्हें सौंपकर मैं सदा के लिये तुम लोगों से विदा हो जाऊँगा। करुणा की मा अबिक दिन न रहेगी। मैं भी इस रूप में अब न रहूँगा। लोग मेरी ऐसी मनोवृत्ति की निंदा करते हैं, करें। मैं उस विषय में अपनी कोई फ़ैक़ियत देने को तैयार नहीं हूँ। केशव और श्याम (वकील साहब के दोनो मृत पुत्र) के मर जाने पर, बेटा नकुल, एक बार सारा संसार मुझे अंधकारमय दिखाई देने लगा था। सारी आशाएँ, सारे मंसूबे, सारे ऊँचे-ऊँचे किते भयानक क्रूरता-पूर्वक छिन्न-भिन्न कर दिए गए। सहसा संसार का प्रत्येक पदार्थ सार-हीन और आधार-हीन जान पड़ा। ऐसा भान हुआ, मानो शीघ्र ही तड़प-तड़पकर मर जाऊँगा; मरा नहीं, तो पागल हो जरूर हो जाऊँगा; पागल न हुआ, तो सारा संसार छोड़-छाड़कर साधु हो जाना तो अनिवार्य ही है। पर मेरे नकुल, कुछ न हुआ; न वह, न वह, न यह।”

नकुल पूर्ण सहानुभूति-पूर्वक रामकिशोर का वक्तव्य सुन रहे थे।

“मगर यह सब हुआ क्योंकर? इसलिये कि शोक के भयंकर आघात में एक बार जिस संसार में प्रत्येक वस्तु आधारहीन-सी नज़र आई थी, उसी में सहसा दो आधार मुझे दिखाई पड़ गए। एक करुणा और दूसरी उसकी मा। करुणा तो खैर उस समय वही ही थी, मगर उसकी मा ने खुद गिरकर भी मुझे सम्हाल लिया। यानी उस बुद्धिमती, पतिव्रता स्त्री ने अपने ऊपर सारे शोक का भार लेकर मुझे हलका कर दिया, कहूँ, मुझे जिलाकर आपने मरने की तैयारी

कर दी ! कहो बेटा नकुल, तुम तो सुशिक्षित हो, भला सोचो तो, यह कैसा महान् त्याग है !”

नकुल ने स्वीकृति-सूचक गर्दन हिलाई ।

“यस, मसल मशहूर है कि बेटो पराए घर की, अतः उसे अब अपना आधार मानना तो असंगत है । बस, मेरा एक-मात्र आधार मेरी स्त्री, जब इस लोक में नहीं रहेगी, तो बत्ताओ, जहाँ उसके जीवन का अधिकांश बीता, और जहाँ के एक-एक परमाणु में उसकी याद लिपटी हुई है, कैसे मैं उसी वातावरण में, उसके लुप्त हो जाने पर, एक क्षण भी ठहर सकूँगा ?”

रामकिशोर अब चुप हुए, और रुमाज निकालकर नेत्र पोंछने लगे ।

नकुल ने व्यर्थ शिष्टाचार की बात न कहकर सहानुभूति प्रकट करते हुए इदता-पूर्वक कहा—“वेशक, बाबूजी, दुःख के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि मा के बचने की कोई आशा नहीं है । परंतु.....आप.....हाँ, आपको जैसा मानसिक व्याघात पहुँचेगा, या पहुँच रहा है, मैं उसका अनुमान कर सकता हूँ । इस समय उनका विच्छेद.....सचमुच बड़ा भयानक और कष्टकर है । परंतु मेरी सम्मति में तो आपको एकदम संसार से विरक्त न हो जाना चाहिए । आपके पास धन है, समय है । आप चाहें, तो इन दोनों वस्तुओं का बहुत ही सुंदर उपयोग हो सकता है । यदि आप आज्ञा दें, तो मैं आपको बता सकता हूँ ।”

रामकिशोर आशा और उत्सुकता से अधीर होकर बोले—“कहो, कहो.....।”

“मेरी समझ में,” नकुल ने सिर झुकाकर गंभीर स्वर में कहा—“किसी एक व्यक्ति को यह विशाल संपत्ति सौंप देने से उसका दुरुपयोग होने की संभावना है । मेरा वर्षों का कॉलेज-स्कूलों का अनुभव

यही है कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली अत्यंत दूषित और गलत है । मैं तो वर्षों से एक आदर्श और अभूतपूर्व स्कूल-कॉलेज का स्वप्न देख रहा हूँ । उसकी स्कीम मेरे मस्तिष्क में घूम रही है । मातृ-भाषा को प्राधान्य मिले, स्वास्थ्य, ब्रह्मचर्य, देश-भक्ति इत्यादि पर लेक्चरों का प्रबंध हो, नियमित व्यायाम प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अनिवार्य हो, इत्यादि । बस, मैं तो यही चाहता हूँ कि आप अपने धन को इस महान् शुभ कर्म की पूर्ति में लगाएँ, और अपनी सेवाएँ और अपना तन-मन भी इसी संस्था को अर्पित कर दें, जिससे यश की बात तो अलग रही, देश और समाज की एक बड़ी भारी नैतिक सेवा आप करेंगे, और इस प्रकार आपका विदग्ध हृदय भी बहुत कुछ शांति-लाभ करेगा ।”

नकुल चुप हुए । रामकिशोर के मन की अवस्था कुछ पूछिए मत । ओह ! कैसा महान् त्यागी ! कैसा उच्च व्यक्तित्व ! कैसी सदमिताया ! कैसे सुंदर विचार !

नकुल की इस बात ने उनकी नज़रों में नकुल को कितना ऊँचा उठा दिया । स्नेह-स्निग्ध नेत्रों से श्रद्धा और भक्ति का स्रोत फूट पड़ा, और एक बार उनकी इच्छा हुई, नकुल के पैरों पर गिर पड़े !

कई मिनट तक उनके मुँह से बात न निकली । वह टकटकी बाँध-कर नकुल को सिर से पैर तक निहारते रहे ।

ओह ! इस साधे-सादे, मोटे-झोटे, गँवारु वेश में कैसा महान् व्यक्तित्व छिपा हुआ है !

रायबहादुर रामकिशोर की इस असाधारण चुप्पी पर एक बार नकुल भी चकित हुए, और उन्होंने कुछ शर्माकर, खिसियाकर कहा—“कहिए, मेरी बात आपको कुछ.....आपने कुछ ध्यान-पूर्वक सुनी ?”

“मेरे अजीज !” रामकिशोर ने स्नेह, वात्सल्य और श्रद्धा के मिश्रित गद्गद में विभोर होकर कहा—“तुम्हारी बात सचमुच तुम्हारे

ही योग्य थी ! मैंने ख़ुब ग़ौर के साथ उसे सुना है, और मैं कैसे तुमसे कहूँ, उसने मेरे हृदय में तुम्हारा आसन कितना ऊँचा कर दिया है ! ओह ! मेरे नकुल ! तुम महापुरुष हो, और छोटे होते हुए भी तुम्हारे पैर छूने की मेरी इच्छा होती है !”

संकोच से सिमटकर नकुल ने सिर ज़रा और नीचे कर लिया, और लज्जा से लाल होकर उलझे हुए स्वर में केवल कहा—“ख़ैर..... ख़ैर..... जो कुछ हो.....।”

फिर क्षण-भर बाद ही कहा—“हाँ, तो मेरी स्कीम और सम्मति के संबंध में आपका क्या मंतव्य है ?”

रायबहादुर रामकिशोर ने कहा—“तुम्हारी भावनाएँ बहुत ऊँची हैं, बेटा ! मैं पुनः तुम्हारा अभिनंदन करता हूँ । सम्मति बहुत ही विचारणीय और गंभीर है, पर मैं एक मोटी-सी बात तुमसे कहता हूँ । वह यह कि मुझसे इस संबंध में कुछ कहने की आवश्यकता ही क्या है । मैं तो एक बार कह चुका, और अब फिर कहता हूँ कि मैंने तो तुम्हें ही अपना पूर्ण उत्तराधिकारी बना लिया है । अब तुम्हें अधिकार होगा कि तुम अपनी वस्तु का किसी प्रकार उपयोग करो !”

अपनी स्कीम के संबंध में रामकिशोर का मंतव्य जानने के लिये नकुल का जो सिर ऊपर उठा था, वह सहसा ढलककर नीचे झुक गया, और न-मालूम किस सोच-समुद्र में डूबकर उनके मुख की चेष्टा ऐसी अद्भुत, ऐसी विकृत, ऐसी दयनीय, ऐसी निष्प्रभ बन गई कि मैं क्या शायद संसार का सर्वोच्च चित्रकार भी उसकी नक़ल उतारकर नहीं बना सकता ।

नकुल इस समय कैसे भयानक संघर्षण में पड़े हुए हैं !

दुनियादार रामकिशोर का साथी-ठनका । उस व्याह की बात सुनने की पूर्व-परिचित लज्जा में और इस चेहरे के हठात् काले, स्याह

पढ़ जाने में कितना अंतर है ! क्या यह उनके अनुभवी नेत्रों से छिप सकता था ? क्षण-भर को वह अवाह् हो गए ।

पर वह तो इसे वैसी पूर्व-परिचित लज्जा का ही कोई नया रूप समझेंगे, वैसा ही समझना उनके अनुकूल है, और वैसा ही समझने से उन्हें लाभ हो सकता है । तो उन्होंने वही समझकर कहा—“न बेटा, लज्जा करना तुम्हें शोभा नहीं देता । तुम बहुत समझदार बच्चे हो । और, लज्जा करने की कोई बात भी नहीं है । बताओ न, इसमें अड़चन क्या है ? स्कीम तुम्हारे पास तैयार, साधन तुम्हें प्राप्त हो ही जायगा ! तब उसे कार्य-रूप में परिणत करते क्या देर लगती है ? बोलो, साफ़-साफ़ कहो ।”

बड़ी कठिनता से नकुल के मुँह से निकला—“जी ! उसमें बड़ी अड़चन है.....।”

“अच्छा ! अड़चन ? क्या अड़चन ?”

“जी हाँ, बड़ी भारी अड़चन है ।”

कहकर नकुल अन्यमनस्क भाव से छत की ओर ताकने लगे ।

“कैसी अड़चन बेटा, बताओ तो सही !” ओह ! बेचारे बृद्ध के स्वर में कैसी भीषण कातरता और अधीरता थी ।

नकुल ने हारकर कहा—“क्या बताऊँ ?.....”

“बताओ, साफ़-साफ़ बताओ ।”

तब नकुल ने भयानक साहस से काम लेकर कह डाला—“आपकी कन्या का पाणिग्रहण करना मेरे लिये संभव नहीं !”

रामकिशोर कुर्सी से कई इंच ऊँचे उछल पड़े, और मुँह से उनके इठाव “अरे ! क्या..... ?” निकल पड़ा ।

फिर कुछ स्वस्थ होकर बोले—“कहो बेटा, यह पुनः क्यों विचार बदल गया ?”

“बात यह है,” नकुल ने यथासाध्य इढ़ होकर कहना शुरू

किया—“विचार बदल देने का आरोपण मुझ पर नहीं किया जा सकता। सच पूछिए, तो मुझे कोई भी ऐसा क्षण स्मरण नहीं पड़ता, जब करुणा के विषय में मेरा वैसा विचार हुआ हो ! बेशक, आपकी झुंझा का आभास पाकर मेरा मन उस निर्दिष्ट केंद्र के चारों तरफ़ कभी-कभी घूम आता था, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि कभी भी मैं उस केंद्र तक, उस लक्ष्य तक पहुँचने का साहस न कर सका। मैंने चेष्टा करके देखा, तो वहाँ तक पहुँचना बार-बार अपने लिये असंभव पाया, और मुझे यह स्वीकार करने में कुछ भी आपत्ति नहीं कि अपना स्पष्ट मत न देकर मैंने आज तक आपको एक व्यर्थ की मृग-तृष्णा, एक भयानक मानसिक धोखे में रक्खा, इस अपनी कमज़ोरी के लिये मैं अपने को कदापि क्षमा न करूँगा ! आप.... !”

रामकिशोर के धैर्य का बाँध टूट गया, आगे झुककर उन्होंने हठात् नकुल के दोनों हाथ धाम लिए, और आँसू बहाते-बहाते कहना शुरू किया—“प्यारे नकुल ! अज़ीज़ नकुल ! यह तुम क्या कह रहे हो ! देखो, इस बूढ़े पर दया करो। इसके बने-बनाए क़िज़ों को चकनाचूर न करो। इसके व्यथित हृदय पर यह असह्य, भयंकर आघात न पहुँचाओ ! देखो, मेरी इस टोपी की लाज रक्खो.....।”

कहते-कहते रामकिशोर सिर से टोपी उतारने लगे।

नकुल ने उनका हाथ पकड़ लिया, और एक बार द्रवित कंठ से कहा—“न, ऐसा नहीं।” और, तब उन्होंने दोनों हाथों से अपना मुँह छिपा लिया !

होश सँभाजने के बाद आज नकुल शायद पहलेपहले रोए हैं।

सहसा कमरे के द्वार पर कुछ आहट हुई, और.....दोनों ने चौंक-कर देखा।

करुणा.....!

(१८)

करुणा ने स्रग्भर द्वार पर ठिठककर दोनों को पूर्ण दर्शन दिया, और तब उसी निर्विकार भाव से, सीधी लकीर की तरह एक-एक पग चबलती, आगे बढ़ी ।

चेहरा सफेद आग-सा है, आँखों में हलकी लज्जाई है, पलक भीगे-से हैं, केश कुछ अस्त-व्यस्त, और चेष्टा अद्भुत और गहन-गंभीर बलिक कहें, विषाद-पूर्ण है ।

नकुल आँखें फाड़कर उसे निहारने लगे, और रामकिशोर तो उछल पड़े । सोचने लगे, इन दोनों को अकेला छोड़कर चले जायँ, या बैठे रहें । न, लड़की सुबह भी कुछ न कर सकी । उन्हें रहना चाहिए ।

अग्राह्य वस्तु को ग्राह्य करने के लिये वृद्ध कैसा व्यग्र हो उठा है ! मान, अपमान, औचित्य, विवेक—सबको—जात मारने को तैयार है !

करुणा आकर चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गई !

वृद्ध रामकिशोर ने कोमल स्वर में कहा—“कहोवे टी, कहाँ से आती हो ?”

करुणा ने मुँह से कुछ न कहकर केवल सिर हिला दिया ।

कुछ क्षण तक सब चुप रहे । कमरे में सन्नाटा छा गया । बात चबलनी जरूर चाहिए । बड़ी भारी असभ्यता हो जायगी ? पर चले कैसे ?

वेचारे रामकिशोर थे गर्जमंद, आखिर उन्हें ही धोखना पड़ा । “हाँ, करुणा, तुम्हारा सार्टिक्रिकेट मिला गया क्या ?” उन्होंने कहा ।

करुणा ने वही पहले-जैसा स्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया ।

तब रामकिशोर नकुल की तरफ देखकर बोले—“चलो न, नकुल इस बार पहाड़ पर ही हो आवें ।”

नकुल तो सारा संबंध, सारा प्रलोभन त्याग चुका है। वकील साहब से कह भी चुका है। फिर उन्होंने क्यों सहसा ऐसा अनुरोध किया ? और अब, करुणा के आगे, किस प्रकार सहसा उसे अस्वीकार करे ? बेचारा फिर उसी धर्म-संकट में उलझकर चुप रह गया।

करुणा के श्री-हृत् नेत्रों में, पिता की बात पर, सहसा चमक दिखई दी थी, और उसने क्षण-भर आशा-पूर्ण दृष्टि से नकुल की ओर देखा।

यह दृष्टि रामकिशोर की आँखों से छिपी न रही, और कन्या की वृत्तियों से परिचित वह वृद्ध उसका यह अनुराग देखकर एक बार बहुत हर्षित हुआ। अभी तक उसे जो यह विश्वास था कि किंचित् दबाव डालकर उसने नकुल को ब्याह करने को राजी किया है, वह सहसा इस समय दूर हो गया।

अब वृद्ध अपनी पूरी ताकत आजमाएगा। कहा—“हाँ, नकुल, अब कॉलेज तो बंद हो ही रहा है, क्यों नहीं चलते ?”

सहसा नकुल को एक युक्ति सूझ गई। बोले—“इस अवस्था में कैसे जाया जा सकता है.....”

“कैसे ?—क्यों ?”

“जब कि मा. भयानक रोग-ग्रस्त है !”

रामकिशोर क्षण-भर ठहरे, और फिर कहा—“ओह भाई, यह तो राज-रोग है ! चलो, कुछ दिन रहकर चले आएँगे।”

नकुल ने रामकिशोर के त्याग की कल्पना की, और एक बार वह किसी अभूत-पूर्व गहन विचार में पड़ गए।

रामकिशोर समझ, बाज़ी मार ली। बोले—“हाँ तो, योजो, की जाय तैयारी ?”

नकुल चौंकर बोले—“तैयारी ? जी नहीं, मैं नहीं जा सकूँगा !” कहते-कहते उन्होंने सिर झुका लिया। एक बीभत्स धिक्कार-

भाव से उनका हृदय भर उठा। हाय ! आज कैसी कठोरता का प्रदर्शन उन्हें करना पड़ रहा है !

इस इनकार ने रामकिशोर को निराश कर दिया। पर अपनी करनी में कसर न छोड़ेंगे ! सोचकर कहने लगे—“क्यों बेटा, अड़चन क्या है ? महीने-पंद्रह दिन में लौट आँगो।”

नकुल के पास केवल वही एक बहाना था। बोले—“माताजी.....उन्हें इस अवस्था में छोड़ना चाहिए !”

रामकिशोर छूटते ही बोले—“तो फिर उन्हें भी साथ ही ले चलेंगे !”

नकुल कुछ उत्तर न दे सके। कुछ दूटा-फूटा देते भी, तो उन्हें अवकाश न मिला। इठात् करुणा चिल्ला उठी—“पिताजी, आप क्यों झुशामद करते हैं ?”

अब दोनों ने उसकी तरफ देखा। नेत्र रक्त-वर्ण हो रहे थे, माथे पर पसीना चुचुआ रहा था, शरीर काँप रहा था।

रामकिशोर ने झौंककर उसकी यह मूर्ति देखी, और कोमल स्वर में पूछा—“क्या है बेटी ?”

ओह ! करुणा उत्तेजित होकर कैसा अनर्थ कर बैठी !

पलक-मारते वह अपनी भूल समझ गई, और चुप-भर में अत्यंत शांत होकर उसने पिता से कहा—“आप ज़रा-सी देर के लिये यहाँ से जा नहीं सकते हैं क्या ?”

वाह ! कैसा अद्भुत प्रस्ताव ! पिता से जाने का अनुरोध ! और, संभाव्य पति के साथ एकांत में रहने की इच्छा का प्रदर्शन !

रामकिशोर ने अवाक होकर एक बार कन्या के गहन-गंभीर मुख पर दृष्टि-पात किया, और बिना कुछ बोले, चुपचाप उठकर, कमरे से बाहर हो गए।

“क्यों सला,” रामकिशोर जब आँखों से ओझल हो गए, तो

करुणा ने आगे झुककर कहा—“प्रोफेसर साहब, आप कल्पना कर सकते हैं, मैंने पिताजी से ऐसा अनुरोध क्यों किया ?”

नकुल ने नेत्रों में अचरज और उदासीनता भरकर बहुत धीरे-से सिर हिलाया, और कहा—“न !”

“इसलिये कि मैं आपको एक सूचना दे दूँ।”

नकुल ने अपनी चेष्टा से ‘क्या ?’ का भाव प्रदर्शित किया, और आगे झुक गए।

“.....जो शायद आपके लिये अत्यंत हर्षकर होगी।”

नकुल के चेहरे से वह ‘क्या?’ का भाव अभी तक नहीं मिटा था।

“वास्तव यह है, मैं कदापि आपसे विवाह न करूँगी।”

करुणा अपनी इस बात के उत्तर में न-जाने क्या-क्या कल्पना करके आई थी। पर वे कल्पनाएँ निर्मूल सिद्ध हुईं। नकुल के नेत्रों में ज़रा-सी चमक तो बेशक दिखाई दी, पर मुँह से उन्होंने, अत्यंत साधारण भाव से, केवल यही कहा—“बहुत अच्छा !”

जी हाँ, चेहरे का भाव उनका बिजकुल अपरिवर्तित रहा।

करुणा तो उनका यह गंभीर भाव सहन नहीं कर सकती। करुणा तो उनकी गंभीरता में कृत्रिमता देखती है। वह तो उनको आश्चर्य से उछलते या हर्ष से हँसते देखना चाहती है, और फिर एक बात कहकर उनका आश्चर्य, हर्ष, संतोष सहसा नष्ट करने का आनंद लूटना चाहती है। चुभते हुए ताने के स्वर में बोली—“कहिप, मेरी बात सुनकर आपको कितना हर्ष हुआ है ?”

नकुल ने उसी निर्विकार भाव से सिर हिलाकर कहा—“ज़रा भी नहीं।”

“ज़रा भी नहीं ?” करुणा बोली—“और दुःख ?”

“दुःख ? दुःख भी नहीं।”

“तो फिर कुछ भी नहीं ?”

“हाँ, हुआ है, थोड़ा संतोष ।”

“यह संतोष ही क्यों ?”

नकुल ने इस प्रश्न का उत्तर देने में थोड़ा आगा-पीछा किया । शायद यह सोच रहे थे कि वह बात कहें, या न कहें । अथवा यह कि किस तरह कहें ।

करुणा ने दूसरी धार वह प्रश्न नहीं किया, और स्थिर दृष्टि से नकुल का मुख ताकती रही । मानो अभी तक उत्तर की प्रतीक्षा कर रही है ।

तब नकुल को उत्तर देना ही पड़ा ।

“मेरी एक आंति दूर हो गई !” उन्होंने कहा ।

“क्या ?”

“अगर आप न कहतीं, तो.....मैं समझता, मेरे निश्चय ने आपको निराश किया ।”

करुणा ने चुप-भर चुप रहकर नकुल की बात समझी, और सिर हिलाकर ओंठ काटा, और सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा—“हुँ ! यह.....”

तब वह सहसा चुप हो गई, और पूरे एक मिनट चुप रहकर बोली—“अच्छा, आप सच कहते हैं, हर्ष नहीं हुआ ?”

“न, हर्ष क्यों होता ?”

“बताऊँ, क्यों होता ?”

“हाँ ।”

“कुमारी से व्याह.....”

हाय-हाय ! सारा आनंद ही किरकिरा हो गया । नकुल कैसे संकट में पड़ जाते ! उनकी विकृत चेष्टा देखकर करुणा को कितना आनंद होता ! हाय ! वह सब धूल में मिल गया !

कैसे ?

ठठात् द्वार पर किसी का पद-शब्द सुन पड़ा। दोनों ने सिर ठठाकर देखा—कुमारी की मा.....!

दयावती क्षण-भर स्तब्ध-सी द्वार पर खड़ी रहा! न-जाने क्या हुआ? फिर सहसा हँसकर उसने कहा—“हाँ, बेटा, मैं जा रही हूँ।”

नकुल ने कुर्सी से खड़े होकर कहा—“अच्छा। आइए!”

“न, अब जाती हूँ। कभी आओगे?”

“देखिए।” कहकर नकुल ने एक बार करुणा की ओर देखा। हाय! उसकी बात किस जोर से खटकती हुई उनके मस्तिष्क में घूम रही है!

“क्या बताऊँ, बेटा! तुम गए, और मैं वहाँ न रही। अच्छा तो, अब ज़रूर आना, और जल्दी ही आना!”

कहकर दयावती जल्दी से जाने को प्रस्तुत हुई।

कहें, वर्तमान वातावरण की भयानक अशांति और तद्विग्नता का कुछ अस्पष्ट आभास उसने पा लिया।

सहसा करुणा ने तीव्र स्वर में कहा—“हाँ-हाँ, बबराओ नहीं, बहुत जल्दी ही आएँगे, और स्यायी.....”

दयावती ने बीच ही में कहा—“और हाँ बेटा, तुम भी आना, अब तो परीक्षा भी हो चुकी!”

करुणा के हृदय में तो प्रचंड ज्वाला धधक रही है। वह तो दयावती के इस स्नेह-अनुरोध में भी व्यंग्य पा रहा है। क्यों न इस व्यंग्य का मुँह-तोड़ उत्तर यह दे? बोली—“मुझे बुलाकर क्या लेना है? इन्हें ही बुलाओ।”

दयावती ने हँसकर कहा—“इनमें-तुझमें कुछ भेद है री पगली! अब तो पहले यह, फिर तू! छिः! इतनी बड़ी हुई, और बचपन नहीं गया! बेटा नकुल! मेरी करुणा बड़ी पागल है, इसे आदमी बनाना तुम्हारा ही काम है!”

हाय ! बेचारी दयावती यथार्थता की कल्पना कैसे करे ? और ठंडे पानी का छींटा लगकर गरम तवा जिस प्रकार क्रोध से चिड़चिड़ा उठता है, वही दशा इस समय करुणा की हुई ।

हाय ! इस स्नेह के बदले में उसने देखिए, क्या कह डाला ! बोली—
“हाँ, तुम्हारी कुमारी पंडिता सही, मैं तो पागल ही भली हूँ ।”

बात यहाँ तक पहुँचेगी, और वह चंचल, उच्छ्वसल, विनम्र लड़की ऐसा कटुआ उत्तर देगी, इसकी कल्पना दयावती ने न की थी । मुँह उसका उतर गया, और क्षण-भर स्तब्ध रहकर उसने कहा—

“अच्छा, जाती हूँ !” कहकर दयावती चुपचाप चल दी ।

“यह तो उचित नहीं हुआ ।” नकुल ने दुःखित स्वर में कहा—
“आज इतनी अव्यवस्थित क्यों हो करुणा ?”

करुणा ने आँखें झुपकाकर सिर हिलाते हुए कहा—“उस बात को जाने दोजिए, और बताइए, मेरा निश्चय सुनकर आपको हर्ष हुआ या नहीं ?”

नकुल ने उस पहले सिलसिले को याद करके कहा—“हर्ष ? हर्ष काहे का ?”

“कुमारी से व्याह करने में बाधा न रही, यह देखकर ।”

इस बात का जो प्रभाव होना था, हो चुका । नकुल ने अविचलित स्वर में कहा—“यह तुम क्यों पूछती हो ?”

करुणा ने क्षण-भर धमकर कहा—“बताऊँ ? सुनोगे ?”

“हाँ, कहो ।”

“देखो, पहले मुझे एक बात बताओ । स्पष्ट और एक वाक्य में और सच !”

“क्या ?”

“सुनो, व्याह न करने का कारण ? एक वाक्य में, देखो, एक-दम ।”

“एक वाक्य में ? तो सुनो, तुम धनवान् की कन्या हो ! तुम मुझे छुद्र समझती हो, तुम मेरे पिता की सेवा नहीं कर सकती, उनका आदर नहीं कर सकती ।” कहकर नकुल ने नेत्र पूरे खोले लिए ।

अब करुणा ने कड़ककर कहा—“तो सुन, रे पिता के अंध-भक्त ! कोई भी स्त्री उस कुसंस्कृत वृद्ध की सेवा नहीं कर सकती !”

नकुल स्तब्ध रह गए ।

तब करुणा ने एक साँस में वह सारी बात कह डाली । कैसे वह उनके घर गई, और उनके पिता ने क्या व्यवहार उसके साथ किया !

सब सुनाकर उसने कहा—“तो अब सुनो, तुम जो कुमारी को संसार की सर्व-श्रेष्ठ नारी समझने लगे हो, और अपने लिये उसे चुन चुके हो, तो यह तुम्हारी कोरी आंति है ! कुमारी देवी नहीं है । समझे ? मेरी यह बात याद रखना कि उसके साथ विवाह करके तुम भयानक भूल करोगे ।”

नकुल चुप ! पथर की तरह अविचल ! इस करुणा ने सहसा उन्हें किस प्रकार नंगा कर दिया है ! कैसे वह अपने इस नंगेपन को छिपाएँ ? ओह ! कैसा भयानक संकट है !

करुणा के ओठों पर भयानक हास्य प्रस्फुरित हुआ ! बोली—“मैं कुमारी की शुभचिन्तक हूँ । तुम उसके दुश्मन हो । तुम जब उससे विवाह कर लोगे, तो तुम्हारी भयानक भूल प्रकट होगी, और आजीवन तुम्हें जलाएगी । समझे ? मेरा-तुम्हारा व्याह... ! वह तो असंभव था, और असंभव है ! मेरा-तुम्हारा स्वभाव, व्यक्तित्व और मेरी-तुम्हारी परिस्थितियाँ इतनी दूर-दूर हैं कि एक दूसरे को देख भी नहीं सकती । पिताजी का व्यर्थ का हठ था । मैं तुम्हारी स्त्री बनकर कभी सुखी नहीं हो सकती ।.....सुनते हो.....?”

कहकर करुणा ने विद्रूप का हास्य हँसा ।

नकुल का सिर ऊपर न उठेगा, न उठेगा ।

तब उसने फिर कहना शुरू किया—“मैं पास के कमरे में बैठी हुई तुम्हारी सब बातें सुन रही थी । तुमने स्वयं अपनी कमज़ोरी को माना है । अपनी बात मैं छोड़ दूँ, तो भी पिताजी को तुमने अवश्य आंति में रक्खा है । समझे ? और अब उन्हें इस प्रकार साफ़ जवाब देकर तुमने ऐसा भयानक अपराध..... ।”

“ओह ! अचम्य !” कहकर नकुल ने दोनों हाथों से अपना मुँह ढाँप लिया, और रूँधे कंठ से कहा—“हाँ, करुणा, यह बड़ा भयानक अपराध है । मैं इसके लिये कभी अपने आपको क्षमा न करूँगा ।.....अच्छा, तुम्हीं मेरे लिये कोई दंड तजवीज़ कर दो ।”

“मैं ?”

“हाँ ।”

“मैं ?”

“हाँ ।”

“मेरा दंड स्वीकार करोगे ?”

“करूँगा करुणा, अवश्य करूँगा ।”

तब करुणा चुप होकर कुछ सोचने लगी ।

पूरे दो मिनट बीत गए । करुणा का मुख क्रमशः रक्त-वर्ण हो उठा, जैसे कोशिश करके उसने क्रोध को बुलाया है ! कहीं ज़रा-सी रियायत, ज़रा-सी उदारता, ज़रा-सी दया वह न कर बैठे !!

नकुल ने चेहरे पर से हाथ अभी तक न हटाए थे । हाँ, ज़रा झुक जरूर गए थे । उसी अवस्था में करुणा की आवाज़ सुनाई दी—

“तो सुनो अपना दंड !”

नकुल सुनने लगे ।

“भविष्य में कभी कुमारी के घर जाने का साहस न करना ।..... व्यर्थ उस बेचारी का सर्व-नाश हो जायगा !”

नकुल ने सहसा मुँह पर से हाथ हटा लिए, वण-भर करुणा की जलती हुई आँखों में न-जाने क्या पड़ते रहे, और तब खड़े होकर बोले—“स्वीकार है।”

करुणा ने बैठे-बैठे ही पूछा—“तो न जाओगे?”

नकुल बिना उसकी ओर देखे हुए ही बोले—“प्रतिज्ञा करता हूँ, न जाऊँगा। सचमुच पिताजी की सेवा वह भी न कर सकेगी।”

“मानते हो न?”

नकुल जवाब दिए बिना ही कमरे से बाहर हो गए।

(१६)

एक महीने बाद की बात है। कुमारी के घर करुणा का आना-जाना बराबर जारी है। आज भी आई है।

अब वह कुमारी से उतना खलककर नहीं मिलती; उसके चेहरे में कुछ हँदने की चेष्टा करती रहती है। और कुमारी के चेहरे पर हँदने-जायक कोई चीज—माजूम होता है—है भी अवश्य। क्योंकि अब उस पर हर वक्त एक अद्भुत विषाद की रेखा दिखाई देती है।

आते ही करुणा—हाँ, दवे-पाँव—सोने की कोठरी की तरफ चली। मा जमना नहाने गई थीं।

दवाँजे पर ठिठककर करुणा ने भीतर झाँका। क्या देखती है कि कुमारी एक पूरे बिस्तरे का तकिया बनाए चारपाई पर तिछी लेटी है, और मनोयोग-पूर्वक कोई मासिक पत्र पढ़ रही है।

हैं! एक बार उसने समझा, शायद अम हुआ, पर दूसरी बार निश्चय हो गया कि कुमारी रो रही है!

अब इसे रोना आप कह सकते हैं या नहीं। नहीं जानता, क्योंकि सिसकियों की आवाज़ नहीं आ रही थी—बहरहाल आँसू बराबर एक के बाद एक सरके आ रहे थे।

वाह! कुमारी को खजाने का कैसा बढ़िया मौका है!

सहसा छुड़ाँग मारकर कटुणा उसके खिर पर जा पहुँची, और मासिक पत्र का अंक छीन लिया।

कुमारी हक्की-बक्की, भौचक-सी उसकी तरफ देखने लगी।

“कहिए देवीजी !” कटुणा ने मासिक पत्र के खुले हुए पृष्ठ पर दृष्टि डालते हुए कहा—“ये आँसू किस सौभाग्यशाली की याद में खर्च किए जा रहे थे ?”

कुमारी के शरीर में काटो तो लहू नहीं। बुरी पकड़ी गई ! रंगे-हाथों ! हाय राम ! कैसे अपनी सफाई दे ?

“श्रीयुक्त प्रो० नकुलचंद्र एम० ए०, बी० टी० !” कटुणा ने पत्र की ओर देखकर कहा—“क्या मैं पूछ सकती हूँ..... कि.....”

कटुणा आगे न बोल सकी। अब परिस्थिति बदल गई है। अब ऐसी उच्छ्वसलता उसे शोभा न देगी। मूट कहीं-की-कहीं पहुँचकर बोली—“मा कहाँ है ?”

दुबती-सी कुमारी ने कहा—“जमनाजी !”

“कितनी देर में आवेगी ?”

“अभी, थोड़ी देर में।”

“क्या रोज़ इसनी ही देर हो जाती है ?”

“हाँ.....”

“ओहो ! तो बहुत दिन-बढ़े जाती होगी ?”

“नहीं, वहाँ जप करते-कराते देर लग जाती है।”

कैसे निरर्थक प्रश्न कटुणा कर रही है। किसी तरह कुमारी बोलें तो ! अब तो उसकी शर्म उतारनी है न ! बड़ी पगली वह है। आते ही शरीर का मुँह बंद कर दिया।

तब कटुणा ने नई बात छेपी—“कुम्हो ! सुनती है ? एक भारी निर्वृजता करने आई हूँ।”

“क्या ?”

“अपने ब्याह की खबर सुनाने !”

यह करुणा ने क्या कह डाला ? यह कुमारी के कलेजे पर हठात् किसने मुक्का मार दिया ? यह उसके नेत्र कौन बंद किए दे रहा है ? यह उसके कान कौन फोड़े दे रहा है ? यह कौन है, जो सारे शरीर को मरोड़कर उसे निचोड़े दे रहा है ?

पर इस सबका प्रदर्शन उसने किया नहीं। भयानक चेष्टा करके ओठों पर उसने हास्य की पुट दी, और पूछा—“कब ?”

“सत्ताईस तारीख को—बीस दिन हैं !”

कुमारी बेहोश होना चाहती है। उसे समहालनेवाला इस वक्त कौन है ?

हाँ, एक जहरीली बात ने उसे समहाल लिया।

करुणा ने कहा—“कहो, देवीजी, आपके.....हाँ, प्रोफेसर महोदय तो हाल ही में यहाँ नहीं आए थे ?”

“कौन ? क्या ?” कुमारी सहसा लिहर उठी।

“अजी, यही श्रीयुक्त प्रोफेसर नकुलचंद्रजी एम्० ए०, बी० टी० महोदय ; इस लेख के लेखक ?”

यह करुणा क्या पूछ रही है ? कैसे पूछ रही है ? कैसा बेढब तरीका है ? ओह ! नकटी मेरा मज़ाक उड़ा रही है ! हाँ, क्यों नहीं ? उसे उड़ाना ही चाहिए !

पर, यह समझकर भी अपनी कमजोरी प्रकट न होने देगी। किः ! ऐसी स्वार्थपरता वह कर सकती है ? करुणा—करुणा उसकी प्यारी सखी, वहन से ज़्यादा प्यारी—प्यारी—प्यारी !—उससे प्रति-स्पर्धा करना, या ईर्ष्या करना, या छल-फुट... ..ओह ! क्या वह उसे शोभा देता है ! वह अबोध, स्नेह-पूर्ण सखी, जो सदा उसकी भक्त बनकर रही, सदा उसके आदेश पर चली, सदा

उससे दूरी, सदा जिसने उसके लिये त्याग किया, सदा जिसने उसका सम्मान किया.....सहसा कुमारी को वह धोखीवाली बात याद आ गई.....ओह ! उसके लिये क्या वह अपने मन पर क्रावू रखकर यह त्याग न कर सकेगी ?

करेगी ! और झरूर करेगी !

तब उसने हँसकर कहा—“अरे नकटी ! इस वक्त, भला उन्हें मेरे पास आने की फुर्सत कहाँ ?”

करुणा के नेत्रों में कुटिलता की भयानक चमक दिखाई दी ! कहने लगी—“तो नहीं आते ?—कब से नहीं आते ?”

“कब से ? यह करुणा क्या पूछती है ? क्यों पूछती है ?” कुमारी ने कहा—“कब से बताऊँ ? कुल एक ही बार तो वह आए हैं ! देखो, जब तुम.....तुम्हारे सबके साथ.....!”

“हूँ ! तो उसके बाद नहीं आए न ?”

“न ।”

करुणा यह कैसे प्रश्न कर रही है !

“पता नहीं, किस चक्कर में रहते हैं । हमारे यहाँ भी मुहत्त से नहीं आए ।”

कुमारी एक बार जैसे आकाश से गिर पड़ी । “क्या कहा ?” उसने आँखें फाड़कर कहा—“तुम्हारे यहाँ भी नहीं आए हैं ?”

“हाँ, ऐसे ही अजीब-से आदमी हैं !” करुणा के ओठों पर रुखी, सूखी, निष्प्रभ मुसकान थी ।

कुमारी हँसी, और बोली—“अब नहीं आते, तो क्या ! बीस दिन बाद तो श्रीमतीजी की गंध सूँघकर दौड़े-दौड़े आएँगे ।”

करुणा के हृदय-कारागार से एक लंबी साँस मुक्त हो गई । फिर अकट हँसकर वह बोली—“अरे ! यह क्या तू कहने लगी ?”

“क्या ?”

"छिः ! अरे, वह तो मेरे आता है !" यह वाक्य कहने के लिये करुणा को कितने साहस से काम लेना पड़ा, वही जानती है। ओफ़् ! यह करुणा ने क्या सुनाया ? यह कैसी अश्रुत, अनहोनी, अनपेक्षित बात है ! क्या कुमारी यह कल्पना कर ले ? क्या उसकी सत्यता पर विश्वास कर ले ?

एक मिनट के लिये कुमारी को सर्वत्र अंधकार-ही-अंधकार देख पड़ा, और कुछ बोलने के लिये वाक्य भी न मिले।

तब रूँधे गले से उसने पूछा—“यह तुमने क्या कह डाला ?”

करुणा हँसी, और बोली—“अरे ! क्या तुम्हें मालूम नहीं ?”

“क्या ? अरे ! तुम्हारा ब्याह तो प्रोफ़ेसर.....।”

अब करुणा खिलखिला पड़ी !

“अरे ! अरे ! जा माफ़ करती हूँ। और कोई कहे तो फ़ौजदारी हो जाय, कम-से-कम बोल-चाल तो छूट ही जाय। चख, चल, बड़ी अफ़जलमंद की दुम बनी है। छिः ! किसकी स्त्री मुझे बनाने लगी !”

करुणा कहती क्या है ? कुमारी कैसे इसे सच समझे ? हे भगवान् ! यह सूरज पश्चिम में उदय हो गया है, या उसके कान बलटा सुनने लगे हैं, या करुणा का दिमाग़ खराब हो गया है ?

पर कुछ भी न हुआ था। करुणा ने बार-बार कहकर यह समझा दिया कि प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र से नहीं, रामशरण बी० ए० से उसका ब्याह होगा।

अब कुमारी अजीब साँप-छछूँदर में पड़ी। कई बातें पूछना चाहती है, पर कैसे पूछे ? न करुणा बताने को इच्छुक नज़र आती है। न पूछना उसे संगत लगता है ? भला कैसे पूछे ? उसे लगे, मुझे चिढ़ा रही है, मेरा उपहास कर रही है, मेरे दुर्भाग्य पर प्रसन्न हो रही है। और न भी भला कैसे पूछे ? वह समझे, मुझसे ज़रा-सी सहानुभूति भी नहीं है। मेरे दुर्भाग्य पर प्रसन्न हो रही है।

और इस बात का भी निश्चय नहीं होता कि वह इसे दुर्भाग्य समझती है।

पर इसी पूछ-न-पूछ की स्थिति में दयावती की आवाज़ सुनाई दी। “बेटी करुणा है क्या?”

“हाँ, मा, मैं, ही हूँ।” कहकर करुणा बाहर निकल गई।

बाहर निकल जाने में करुणा ने इतनी शीघ्रता क्यों की? शायद चेहरे की उदासी और आँखों के आँसू छिपाना चाहती थी।

“कह तो बेटी, मा का क्या हाल है?”

“मा का? अब आशा नहीं है, मा।”

“कैसे?—क्या हुआ?”

“रोग भयंकर हो गया है। दो-दो घंटे पर मूच्छा हो जाती है, घंटे-घंटे पर मुँह से खून गिरता है। डॉक्टर कहते हैं—कुछ ही दिनों की मेहमान हैं!”

“हाय!” कहकर दयावती चुप हो गई।

फिर आप-ही-आप कहने लगी—“हे परमात्मा! संतान किसी की मा-बाप के सामने न मरे! हाय! दोनों बेटों का नाम उसे तो खा गया! राम! राम!”

करुणा ने उदास होकर सिर झुका लिया, और कहा—“बहुत कष्ट पा रही हैं। अब तो पिताजी भी वारंवार यही कह रहे हैं—ईश्वर! इन कष्टों से इसे छुटकारा दे!”

“ओह! राम! राम!” कहकर दयावती ने कष्ट और सहानुभूति से सिर फेर लिया, और बोली—“आऊँगी, बेटी, आज देखने आऊँगी। क्या कब का रहा?”

“सत्ताईस……” कहते-कहते करुणा ने दाँत-तल्ले जीभ दबाई, और शर्माकर कहा—“जाती हूँ, फिर आऊँगी।”

“ओरी, मा!” करुणा चली गई, तो कुमारी ने मा के पास आकर

धीरे से कहा—“प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र से इसका व्याह न होगा ?”

मा से कोई जवाब न पाकर कुमारी ने फ़ौरन कहा—“रामशरण से होगा ।”

मा ने स्थिर नेत्रों से बेटी का मुँह ताका, और द्रुव गंभीर स्वर में कहा—“मुझे मालूम है !”

कुमारी ने झटपट आँखें झुका लीं, और टल गई ।

मा के नेत्र क्या कह रहे थे ? मा के नेत्र क्या कह रहे थे ? मा के नेत्र क्या कह रहे थे ?

(२०)

इन बातों को भी कई महीने बीत चुके हैं । कल्या की मा भी मर चुकी है, और रामशरण के साथ उसका व्याह भी हो चुका है ।

निमंत्रण आया था, कुमारी और दयावती दोनो ही गई थीं ।

जो हाँ, नकुल अपने प्रतिज्ञानुसार कुमारी के घर नहीं आए हैं । पर इस प्रतिज्ञा की बात कौन-कौन जानता था ? कल्या और नकुल । और हाँ, कुमारी की कल्पना ने भी उसे बहुत कुछ बता दिया था । सो व्याह में दोनो शामिल हुई थीं । अब वहाँ के मनोभावों और संघर्षों का उत्कल्लेख करके विस्तार बढ़ाना मुझे अभीष्ट नहीं । बस, इतना मैं कह दूँ कि नकुल भी निमंत्रण में आए थे, और कुमारी ने उनसे भेंट न की या कुमारी से उन्होंने भेंट न की ।

हाँ, दयावती मिली थी । मिली क्या थी नकुल के प्रणाम का उत्तर दिया था, और आँखों में आशा और स्नेह-पूर्ण आकांक्षा भरकर कहा था—“क्यों बेटा, भूल ही गए ? क्या आसोगे नहीं !”

नकुल ने क्षण-भर इधर-उधर किया था, और फिर—“न मा, न आ सकूँगा ।” कहकर व्यग्र भाव से हट गए ।

बस, यह घटना और कल्या का हर बार आते ही नकुल के आगमन के विषय में पूछना, दयावती को बहुत कुछ बताने के लिये चपेटे थे ।

और फिर वह बार-बार बेटी का मुँह देखकर किसी गहन-गंभीर चिन्ता में निमग्न रहने लगी ।

“जीजी ! जीजी !” सहसा एक दिन दोपहर को किसी ने दरवाज़े में धक्का देकर पुकारा—“किवाड़ खोलो ।”

किवाड़ खोला गया, तो जिसकी आशा न थी, वह नकुल नहीं, करुणा नहीं । कौन था ?

दयावती का दूर के रिश्ते का देहाती भाई सिरीराम, जो आज चार-पाँच वर्ष बाद जीजी के दरवाज़े आया है !

“ओहो भैया !” दयावती ने उछलकर कहा—“आओ, आओ, हे राम ! आज सुरत..... ।”

कहकर दयावती भाई से लिपटकर रोने लगी ।

“अरे ! यह कौन ?” जब कुमारी ने आकर मामा को प्रणाम किया, तो सिरीराम ने चौंककर कहा ।

“भांजी है भैया तेरी, कुमारी; क्या पहचानता नहीं ?” दयावती ने हँसकर कहा—

“ओहो ! ठीक !” सिरीराम ने भांजी के सिर पर हाथ फेरकर और उसके चले जाने पर यहन से कहा—“कह तो जीजी, कहाँ व्याह किया । हमें तो खबर तक न दी । यच्छि हम लोगों ने तो इस बात का गिला भी बहुत किया ।”

दयावती ने कहा—“व्याह अभी हुआ ही कहाँ है भैया ?”

“क्या कहा ?” सिरीराम का पैर जैसे जलते कोयले पर पड़ गया—“क्या कहा ? व्याह अभी हुआ नहीं है ? अभी तक ? क्याह ? ओहू ! क्या उम्र है ?”

“उमर तो बहुत हो गई भैया, सत्तरह-अठारह बरस की समझो ।”

दयावती ने जान-बूझकर उसकी उमर के दो-तीन बरस छिपाए ।

“तो तू किस नींद सो रही है, जीजी, इतनी उमर की लड़की क्या

घर में रखने-जायक है ? क्यों सात पीढ़ी को नरक में बसीटने के लखन करती है !”

दयावती ग्रामीण अशिष्टता की अभ्यस्त रह चुकी है। इसलिये भाई की बात का उसने बुरा न माना, और कहा—“क्या बताऊँ...”

“तो सगाई-वगाई.....कहीं ठहरी है ?”

दयावती आज से गढ़ी जा रही है। कैसे कह दे कि बीस वर्ष की लड़की अभी तक निराधार है। ज़रा इधर-उधर करके बोली—
“हाँ, एक जगह बातचीत चल तो रही है।”

यह बात कहते हुए दयावती का लक्ष्य कहाँ था ? क्या यह मुझे आपको बताना पड़ेगा ?

“लड़का तो अच्छा है ? पढ़ा-लिखा, बुद्धिमान् ?” इत्यादि प्रश्न बहुत ही संक्षेप में पूछकर भाई साहब भट अपने मतलब पर आ गए “जीजी, एक काम से आया हूँ”, सिर मुकाकर और चेष्टा में पढ़ी से चोटी तक नम्रता भरकर सिरिराम ने कहा—“तेरी सत्तो भी स्यानी हुई है। चौदहवें में लगोगे। तू जाने है, गाँव में तो अच्छे लड़के मिलते नहीं। सब अपद। तेरी सत्तो ईश्वर की दया से अच्छी पढ़ी-लिखी होशियार है। और यह एक ही लड़की। बस, तो इसके लिये वर की तलाश शहरों में ही करनी पड़ी।” कहकर भाई साहब ने भूमिका समाप्त की।

सत्तो इनकी कन्या का नाम है। चौथी-पाँचवीं तक पढ़ी है। दयावती के पिता की संपत्ति का कुछ अंश पाकर यह भाई साहब आज बड़े आदमी बन बैठे हैं। यही कारण है कि देश में योग्य जामाता ढूँढ़ना उनके लिये असंभव हो गया।

“हाँ तो, शहर में एक लड़के का पता मिला। बड़ी तारीफ़ सुनी। सुना है, अभी ब्याह नहीं हुआ है। किसी स्कूल में मास्टर है। सुंदर भी बहुत है, और जीजी, मद की क्या सुंदरता ? बस, मैं

तो परमात्मा का नाम लेकर यहाँ आ पहुँचा। लड़का तो स्कूल गया था, उसका बाप घर में था। उससे बातचीत हुई। आखिर, तुम्हारी दया से, मैं गरीब चाहे जिसना हूँ, इज़्जत-हुर्मत और नाम-प्रतिष्ठा तो है ही। लड़के के बाप ने मेरी आव-भगत की, दहेज़ भी तय हो गया। चार हजार माँगे, वही मैंने स्वीकार किए। आदमी कुछ जानखी जरूर मालूम होता है, मगर है सज्जन और पुराने खयाल का। कहने लगा—‘साहब’ एक-से-एक सुंदर, पढ़ी-लिखी धनवान् घरों की बेटियाँ मेरे बेटे को मिल सकती हैं, और अच्छे-अच्छे लखपती मेरे पैरों में पगड़ियाँ रख गए, पर मैंने नहीं मानी।’ बोला—‘भाई साहब, मैं शहर की लड़कियों से नफ़रत करता हूँ। पहले तो होती ही खजूर-सी.....’ न, बोला ‘शहर की लड़कियाँ न तो मेरी ही कुछ सेवा कर सकती हैं, न अपने पति की। बस, इसलिये मैं तो किसी देहात की लड़की को ही पुत्र-वधू बनाऊँगा।’ बस, जब ऐसे विचार, तो रिश्ता होते क्या देर ! सब बातें झटपट तय हो गईं।”

इसके बाद भाई साहब उपसंहार पर आए—“लड़का तो पढ़ाने गया था। आते ही रुपए देकर मैं उसे रोक देना चाहता हूँ। बात यह है कि मुझे इतनी जल्दी काम बन जाने की आशा तो थी नहीं, इसलिये गाँव से किसी स्त्री को नहीं लाया था। अब तुम भी अपनी ही हो। हमारे यहाँ स्त्रियाँ ही लड़के को रोकती हैं, यह तो तुम भी जानती ही हो। सो मैं इसलिये तुम्हारे पास आया हूँ कि तुम दोनों मा-बेटी मेरे साथ चलो, और तू लड़के के हाथ में रुपए देकर उसे रोक दे।”

भाई का स्वार्थ समझकर भी निर्मल-हृदया दयावती के मन में कोई रोष उत्पन्न न हुआ। बल्कि मन-ही-मन वह कुछ हँसी। ओह ! संसार कैसा स्वार्थी है !!

तब उसने बिना अधिक पूछ-ताछ किए कहा—“अच्छा भैया,

चलूँगी। तू रोटी-घोटी खा। मेरी तो 'आँखों सुख, कलेजे ठंडक'।
अभी चलूँगी। दोनो चली चलेंगी।”

बहन का मन रखने के लिये भाई ने जल्दी-जल्दी भोजन किया, कुमारी को दो रुपए दिए, और कहा—“वर्तन आकर माँज लेना, चलो, जल्दी चलो।”

दयावती ने हँसकर चिढ़े हुए ढंग से कहा—“क्यों घबराते हो भैया, लड़का दूसरी जगह नहीं जा सकता। चार हज़ार थोड़े नहीं होते।”

मन में तो भाई साहब कटे भी खूब और झुँझपाए भी खूब, और बहन की ईर्ष्यालु प्रकृति पर क्रुद्ध भी खूब हुए, पर ऊपर से एकदम दौंस निकालकर बोले—“सत्तो तुम्हारी ही लड़की तो है जीजी, कोई शेर तो है नहीं, जैसा उचित समझो, करो। स्याह-सफ़ेद सभी की मालिक, इस समय तो, तुम्हीं हो।”

दयावती ने कुछ पछताकर कहा—“वह तो डई भैया, मैं तो हँसती थी। ले कुमारी, चल जल्दी।”

“तो मुझे जाना ही होगा?”

“चू-चू! क्या कहती है? चल जल्दी! नहीं सिरिया समझेगा, जलकर नहीं चलती है। पहन कपड़े।”

मा-बेटी झटपट तैयार हो गई, और भाई के साथ ताँगे में बैठकर चलीं।

अरे! यह कौन? शंकरलाल! चुप, चुप कुमारी को न बता-
इए, सारा गुड़-गोबर हो जायगा! ओफ़्! यह कहाँ आ गए?
अरे, क्या नकुल ही सिरौराम के जामाता बनेंगे? वाह! वाह!
अब...? अब देखें, क्या होता है?

उस आँधरे, गड्ढेदार घर के एक कोने में मा-बेटी छुप-छुपाकर बैठ गईं। वर से वेपदंगी की जा सकती है, पर समझी से कैसे करें?

उधर सिरीराम जाकर समधी महोदय के पास बैठ गया। बोला—
“कहिए, अभी आए तो नहीं?”

“अभी तो नहीं आए”, शंकरलाल ने किसी विचार से चौंकर सहसा पूछा—“क्यों जी, बिदा के बर्तन तो चाँदी के होंगे न?”

सिरीराम ने उनकी बात समझकर धीरे स्वर में कहा—“अजी, जो आप कहेंगे, हो जायगा, रिश्ता तो होने दीजिए।”

गुराँकर शंकरलाल ने कहा—“तो आप क्या मुझे ऐसा ओछा समझते हैं कि रिश्ते के बाद आपके सामने एक-एक चीज़ के लिये हाथ फैलाऊँगा, या एक-एक चीज़ के लिये झगड़ा करूँगा? महाशय, जब तक रिश्ता नहीं होता, हम परस्पर अपरिचित हैं, मगर उसके बाद.....।”

कहते-कहते झोर की खाँसी उठी, और वृद्ध शंकरलाल खाँ-खाँ करके झोर से खाँसने लगे। खाँसी के साथ बहुत-सा खून निकलकर कपड़ों में गिर गया।

सिरीराम झिझककर पीछे हट गया, दयावती ने सहानुभूति-सूचक ध्वनि की, कुमारी की आँखों में आँसू भर आएँ।

बिछौना बेतरह गंदा था। बदबू फैल रही थी। एक तरफ़ चौकी पर कुछ उजले कपड़े रक्खे थे। कुमारी ने एक बार उनकी तरफ़ देखा, फिर वृद्ध की, और चुप रह गई।

रह-रहकर इस वृद्ध की परिचर्या करने की प्रेरणा उसके मन में होने लगी। ओह! बिना उपचार वह किस प्रकार दुर्दशा-ग्रस्त हो रहा है!

खाँसते-खाँसते वृद्ध व्याकुल हो उठा। आँखों से झर-झर पानी बहने लगा, कपड़े सारे खून से तर हो गए, और बिस्तर—वह गंदा-मैला, जैसा कुछ था—अस्त-व्यस्त।

वृद्ध उठने की कोशिश करने लगा, पर न उठ सका। सिरीराम घृणा से नाक सिकोड़े परे खड़ा था।.....

सहसा कुमारी उठकर, तेज़ी के साथ, वहाँ पहुँच गई, और वृद्ध का हाथ पकड़कर धीरे से बोली—“उठिए ।”

वृद्ध उठा, उठकर एक बार भर-नज़र कुमारी को देखा । कुमारी ने लजाकर सिर झुका लिया । पर लजाने की ज़रूरत नहीं थी । अपने भाव-हीन नेत्रों में वृद्ध कृतज्ञता लाने की चेष्टा कर रहा था । क्षण-भर दम लेकर उसने धीरे से कहा—“बेटी, मेरी लकड़ी तो पकड़ा दो, ज़रा ।”

ओह ! इस लेखक ने आज पहले-पहल यह स्नेह-संबोधन शंकरलाल के मुँह से सुना है ।

कुमारी ने लकड़ी पकड़ा दी । वृद्ध आकर दड़लीज़ की तरफ़ चला । सिरिराम ने पूछा—“कहाँ ?”

“लघुशंका ।”

उधर वृद्ध गया, इधर कुमारी ने झटपट वह गंदा बिस्तर उठा दिया, और पल्लक-भपकते, वे नए साफ़ कपड़े उठाकर खाट पर बिछा दिए, तकिया लगा दिया, और कंबल तहाकर पाँयते रख दिया ।

इतने में शंकरलाल वापस आए । क्षण-भर ठिठककर उन्होंने कुमारी का कार्य-कलाप देखा, और तब सहसा वृद्ध के झुर्रीदार मुख पर मुस्किराहट दिखाई दी ।

“आइए, बैठ जाइए ।” कुमारी ने लजाकर कहा—“मैंने आपका बिस्तर बदल दिया है ।”

शंकरलाल आगे बढ़े, और उस गुदगुदे बिस्तर पर बैठ गए । कुमारी ने साफ़ कपड़े का एक चिथड़ा लेकर उनके कपड़ों पर गिरा हुआ खून साफ़ कर दिया और कहा—“यह इतने कपड़े आपने क्यों पहन रखे हैं । सिरक एक पहने रहिए ।”

इस ज़रा-सी लकड़ी के स्वर में न-जाने कैसी विनम्रता है कि वृद्ध ने सहसा उसका आधिपत्य मान लिया, और शासित बनकर, मुस्किराकर एक बंदी के अतिरिक्त सब कपड़े उतार डाले ।

कपड़े उतारकर वृद्ध लेट गया, और सिरिराम की तरफ देखकर बोला—“यह लड़की कौन है ?”

“मेरी भांजी है ।” सिरिराम ने धीरे निकालकर और आगे बढ़कर कहा ।

“तुम्हारी भांजी ?” वृद्ध ने लगभग साथ-ही-साथ कहा, और तब आँखें बंद करके लेट गया ।

कुमारी ने वे मैल कपड़े तह करके चौकी पर रख दिए, और भादू उठाकर झटपट कमरा साफ़ कर डाला ।

सहसा वृद्ध ने कहा—“धन्य है बेटी ! तू बड़ी अच्छी लड़की है । ईश्वर तेरा सौभाग्य अवल रक्खे !”

वृद्ध का यह वाक्य पूरा दर्वाजे पर खड़े हुए एक व्यक्ति ने सुना, और तब वह भीतर घुस आया ।

यह कौन ?

जिसकी प्रशंसा हुई थी, उस लड़की को नकुल ने सबसे पहले देखा, और दोनों एक बार अपनी-अपनी जगह पर उछल पड़े ।

“परंतु सिरिराम का प्रस्ताव धीरता-पूर्वक सुनकर नकुल ने कहा—
“मेरा ब्याह तो किसी और से होना निश्चित हो चुका है !”

“किससे ?” सिरिराम ने चौंकर पूछा ।

नकुल ने एकबार अर्थ-पूर्ण दृष्टि से पिता की ओर ताका, और सब कुमारी को देखकर धीरे से मुस्करा दिया ।

ब्यावती दीव पड़ी.....

परिशिष्ट

एक दिन कुरुणा मिसेज नकुल के घर आई, और हँसकर बोली—
“ओरी कुम्भो, बधाई देने आई हूँ ।”

कुमारी ने हँसकर सिर झुका लिया ।

“और एक कैफ़ियत भी देने ।” कुरुणा ने कहा—“देखा, रामशरण
से ब्याह मैंने अपनी दृष्टि से किया था ।”

कुमारी ने मुस्कराकर आकाश की ओर ताका और कहा—“आग्य...”